इकाई–2 पौधों के विकास हेतु मिट्टी एक माध्यम

परिचय :

मिट्टी असंख्य जीवों का आधार है। ये लोकोक्ति वैदिक काल से लेकर आजतक सत्य है। पौराणिक साहित्यों में भी मिट्टी अर्थात् मृदा का उल्लेख भूमि के साथ समानान्तर रूप से किया गया है। भूमि का अर्थ उस मातृत्व से जोड़ा गया है जो सभी जीवों का आधार है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक विटनी ने मिट्टी को पोषक तत्व का भंडार माना जिससे सभी तरह के वनस्पति सम्पोषित होते हैं और अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं।

पौधों की वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – (i) जलवायु सम्बन्धी (Climatic) (ii) जीवीय (Biotic) तथा (iii) मृदीय (Edaphic) कारक। मृदा पौधों की वृद्धि के लिये निम्न आवश्यकतायें प्रदान करती हैं :–.

(i) आवश्यक पोषक तत्व : सभी पौधों को अपने पोषण के लिये मुख्य, गौण तथा सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता होती हैं। वायु एवं जल से पौधों को कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलती हैं, जबकि बाकी अन्य तत्वों के लिए ये मृदा पर निर्भर रहते हैं।

(ii) जल : यह मृदा का एक प्रमुख अंग है। मृदा से जितने खाद्य–पदार्थ पौधे लेते हैं, उनमें पानी का भाग सर्वाधिक होती है। पौधों में प्रकाश संश्लेषण के लिये पानी आवश्यक है यह एक अच्छा विलायक है और पोषक तत्वों को घोल कर पौधों तक पहुँचाता है। मृदा तापक्रम एवं मृदा वायु भी जल के द्वारा नियंत्रित रहते हैं।

(iii) जड़ों के श्वसन के लिये ऑक्सीजन : सभी जीवित पदार्थों (मनुष्य, जन्तु एवं पौधे) के लिये श्वसन अनिवार्य होता है और श्वसन के लिये ऑक्सीजन नितान्त आवश्यक है। पौधों की जड़ों के श्वसन के लिये ऑक्सीजन मृदा वायु से ही प्राप्त होती हैं। साधारणतः मृदा वायु में 20.3 प्रतिशत ऑक्सीजन, 79.01 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 0.15–0.65 प्रतिशत CO_2 मिलती हैं।

(iv) यांत्रिक आधार (Support) : कुछ मृदाओं की भौतिक एवं रासायनिक दशायें ऐसी होती हैं जिनमें पौधों की जड़ें आसानी से गहराई तक जा सकती हैं तथा फैल भी सकती है।

पौधों की वृद्धि के लिये उपरोक्त आवश्यक दशाओं के अतिरिक्त अनुकूल मृदा ताप का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यह पौधों द्वारा मिट्टी से पोषक तंत्व प्राप्त करने, जल शोषण तथा जड़ों की वृद्धि को प्रभावित करता है। उपरोक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि पौधों की वृद्धि के लिये मृदा एक आवश्यक माध्यम है।

2.1 मिट्टी: एक प्राकृतिक त्रिविमीय संसाधन (Soil as a natural three dimensional body)

भूमि और मृदा दोनों पृथक है। पृथ्वी के उत्पति के साथ ही भूमि का उदय हुआ। कालान्तर में उनपर विभिन्न तरह के मृदाओं का निर्माण हुआ। मृदा शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द सोलम से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ फर्श होता है इस प्रकार मृदा भूमि की ऊपरी परत होती है। चट्टानों एवं खनिज पदार्थों से मृदा का निर्माण होता है एवं एक इंच मृदा के निर्माण में 800–1000 वर्ष लगते हैं और स्थलाकृति में परिवर्तन भी बहुत धीमा होता है। बिहार की बहुसंख्यक मिट्टियाँ जलोढ़ प्रकृति की है जिनका स्वरूप बाढ़ के द्वारा कुछ सालों में ही बदल जा सकता है।

मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड है, जिसका स्वरूप त्रिविमीय होता है। मृदा के प्रत्येक पिण्ड में आयतन होता है और प्रत्येक पिण्ड स्थान घेरता है। प्रत्येक मृदा की एक स्पष्ट पृथक ऊपरी सीमा होती हैं, जहाँ से मृदा वायुमण्डल से मिलता है और प्रत्येक मृदा की अपेक्षाकृत कम स्पष्ट क्षेत्र होती है जहाँ से संबंधित मृदा अन्य मृदाओं से मिलती है। इसी प्रकार प्रत्येक मृदा की एक अनिश्चित निचली सीमा होती हैं जहाँ से वह अपक्षीण चट्टान या पैतृक पदार्थों के रूप में श्रेणीकृत होता है।

जीफे एवं मारवट वैज्ञानिकों के अनुसार गहराइयों के खनिज एवं कार्बनिक अवयवों के संस्तरों के अनुसार मृदा के विभेद किये जा सकते हैं। ये संस्तर अपने से नीचे वाले संस्तरों से आकृति, भौतिक गुणों और बनावट, रासायनिक गुणों और संगठन तथा जैविक लक्षणों में विभिन्नता रखते हैं। बकमेन और ब्रैडी वैज्ञानिकों के अनुसार मृदा की मृदाशास्त्रीय (Edaphological) परिभाषा इस प्रकार है "मृदा वह प्राकृतिक पिंड है, जो विच्छेदित एवं अपक्षयित खनिज पदार्थों तथा कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से बने विभिन्न पदार्थों के परिवर्तनशील मिश्रण से प्रोफाइल के रूप में संश्लेषित होती है, यह पृथ्वी को एक पतले आवरण के रूप में ढकती है तथा जल एवं वायु की उपयुक्त मात्रा के मिलने पर पौधों को यांत्रिक आधार तथा आंशिक जीविका प्रदान करती है" (मृदा, यू0 एस0 डी0 ए0 ईयर बुक 1957)

CMYK

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के सारांश के आधार पर मृदा की परिभाषा निम्न है–

"मृदा एक त्रिविमीय प्राकृतिक पिण्ड है जो भूमि की उपरी सतह पर होती है। इसकी सभी विशेषतायें इसके पैतृक पदार्थ, जलवायु एवं जीवों की दीर्घकालीन क्रियाओं का परिणाम है। यह पादप वृद्धि का एक माध्यम है जिससे पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व और सहारा मिलता है।"

मृदा एक प्रकार से जीवित पिंड है, क्योंकि जीवित पदार्थों के समान मृदा का धीरे–धीरे विकास होता है। इनका जन्म पैतृक पदार्थों अथवा चट्टानों से होता है, और यह परिपक्व अवस्था को पहुँचकर पूर्ण प्रोफाइल के रूप में विकसित हो जाती है और कालान्तर में मृत्यु या पूनर्जन्म की ओर अग्रसारित होती है। मृदा में पौधे तथा जन्तु तथा इसके कुछ अवयवी घटक निरन्तर सक्रिय रहते हैं जिससे मृदा में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं, इसलिये मृदा को एक गतिशील (dynamic) प्राकृतिक पिंड कहते हैं। ये जीव एवं सूक्ष्म जीव मृदा के विशेष कार्यों को भी प्रभावित करते हैं। सूक्ष्म जीवों के अभाव में प्राकृतिक तौर पर सम्पूर्ण पादप पोषण लगभग असंभव है।

मृदा गहरी होती है और इसमें पृष्ठ क्षेत्रफल भी होता है। यह विनाशकारी एवं संश्लेषित प्रक्रमों से उत्पन्न एक प्राकृतिक पदार्थ है। मृदा के मुख्यतः चार अवयव होते हैं यथा खनिज पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ, हवा एवं जल। ठोस कण कार्बनिक अथवा अकार्बनिक होते हैं। इनकी आकृति निश्चित नहीं होती है फलस्वरूप कणों के बीच खाली स्थान बनते हैं जिसे मिट्टी कि सरंध्रता (pore space) कहते हैं। इन्हीं सरंध्रों में जल और वायु उपस्थित होता हैं। ये सभी अवयव मिट्टी में पौधों के विकास में सहायक होते हैं। ठोस कण पौधों की जड़ों को जकड़ कर रखता हैं साथ ही साथ पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व भी उपलब्ध कराता हैं। मृदा में जल एवं हवा की मात्रा हमेशा बदलती रहती हैं और यही पादप वृद्धि के लिये मृदा को उपयुक्त बनाते हैं। जल जीवन मात्र के लिए आवश्यक है और वायु पौधों की जड़ों एवं मिट्टी में उपस्थित जीवों के श्वसन क्रिया के लिए ऑक्सीजन उपलब्ध कराता है। एक आदर्श मिट्टी में आयतन के हिसाब से 50 प्रतिशत ठोस कण (45 प्रतिशत अकार्बनिक एवं 5 प्रतिशत कार्बनिक) एवं 50 प्रतिशत सरंध्रता होनी चाहिए। इस 50 प्रतिशत सरंध्रता का लगभग आधा भाग जल एवं शेष भाग वायु से भरा होना चाहिए।

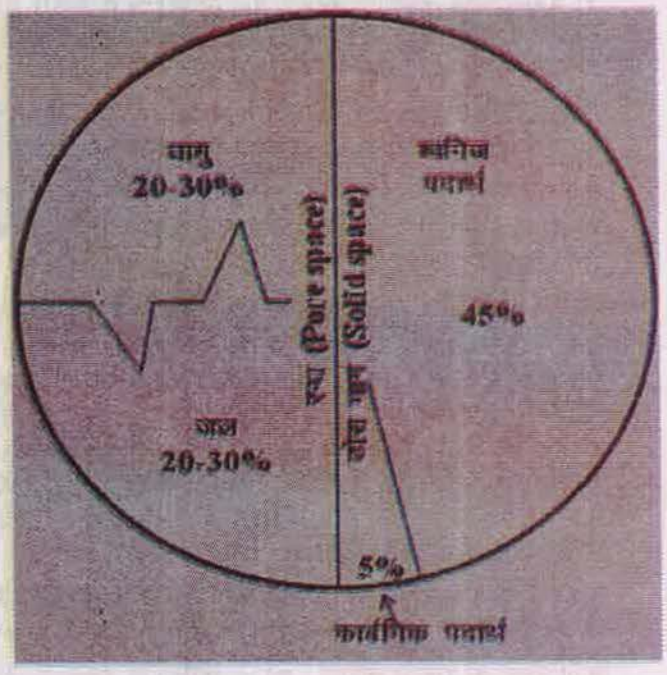

इस प्रकार मृदा एक प्राकृतिक पदार्थ का सभी विशेषताओं जैसे विनाश (degradation), संश्लेषण (synthesis) तथा परिवर्तन (transformation) की पूर्ति करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मृदा, कार्बनिक एवं खनिज पदार्थों का एक प्राकृतिक पिंड हैं।

2.2 मिट्टियों का वर्गीकरण, भारत/बिहार की प्रमुख मिट्टियाँ

मृदायें किसी भी देश की एक बहुत बड़ी आधरभूत प्राकृतिक सम्पदायें होती हैं। उनका अच्छी प्रकार उपयोग मृदाओं के स्वभाव, गुणों, विस्तार सीमा तथा स्थान के बारे में ज्ञान प्राप्त करने और उस ज्ञान का युक्तिपूर्वक प्रयोग करने पर निर्भर होता है। मृदा वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य किसी क्षेत्र की मृदाओं का अध्ययन करना और उन क्षेत्रों का मानचित्र दर्शाना है, ताकि उनका अच्छी तरह प्रयोग किया जा सके।

2.2.1 मृदा वर्गीकरण

विभिन्न मृदा निर्माण कारकों के प्रभाव से भिन्न–भिन्न प्रकार की मृदायें बनती हैं। इसलिए मृदा अध्ययन को सुविधाजनक बनाने के लिए आवश्यक है कि उन्हें उनकी विभिन्नताओं और समानताओं के आधार पर एक व्यवस्थित एवं क्रमबद्व रूप में वर्गीकृत किया जाए। मृदा वर्गीकरण के लिए वैज्ञानिक प्राचीनकाल से ही प्रयत्नशील रहे हैं। जिसका विकास रूस और अमेरिका में हुआ था।

मृदा का आधुनिक वर्गीकरण मृदा प्रोफाइल के अध्ययन पर आधरित है, जो कि मृदा निर्माण के सभी कारकों एवं प्रक्रमों का उत्पाद है। विभिन्न स्तरों के वर्गीकरण को दर्शाते हुए मृदाओं को स्पष्टतः पृथक् संवर्गों (कैटेगरिज) में वर्गीकृत किया गया है। उच्च संवर्ग : गण (ऑर्डर), उप–गण (सब ऑर्डर), वृहद मृदा समूह (ग्रेट स्वायल ग्रुप) एवं उप–समूह (सब ग्रुप) हैं, ये बहुत बड़े क्षेत्र की मृदाओं का सामान्य परिचय ज्ञान कराते हैं तथा उनका सम्बन्ध सम्पूर्ण संसार की मृदाओं से दर्शाते हैं। निम्न संवर्ग कुल (फैमिलीज), श्रेणी (सिरीज)। प्ररूप (टाइप्स) तथा प्रावस्थायें (फेजेज) हैं। निम्न संवर्ग मृदा की उत्पादक क्षमताओं का मूल्यांकन करने में महत्वपूर्ण है।

गण स्तर पर मृदाओं को (1) क्षेत्रीय (जोनल); (2) अन्तः क्षेत्रीय (इन्टर जोनल) तथा (3) अक्षेत्रीय (एजोनल) समूहों में वर्गीकृत किया जाता है। क्षेत्रीय मृदायें उचित जल निकास वाले पैतृक पदार्थो पर विकसित हुई है और उनकी सुविकसित प्रोफाइल वातावरण के साथ साम्यावस्था में होती है, जैसे पॉडजोल्स, लैटेराइट और ग्रुमुसोल। अन्तः क्षेत्रीय मृदाओं में भिन्न प्रोफाइल होती है और उनके गुण स्थलाकृति की स्थानीय परिस्थितियों या पैतृक पदार्थो में जलवायु और वनस्पतियों के सामान्य प्रभावों की अपेक्षा अधिक प्रभावित होते हैं। विशेषतया ऐसी मृदायें दो या अधिक क्षेत्रीय मृदाओं के साथ छोटे क्षेत्रों में मिश्रित पायी जाती है, उदाहरणार्थ, लवणीय–क्षारीय मृदायें, भौम–जल लेटराइट्स (ग्राउण्ड वाटर लेटराइट्स) तथा रेंडजीना मृदायें। अक्षेत्रीय मृदाओं में अविकसित प्रोफाइल होती है। ये मृदायें ढालू चट्टानों पर पायी जाती हैं, जिनमें मृदा निर्माण अच्छी प्रकार नहीं हो पाता है। ये मृदायें किसी भी जलवायु में पायी जा सकती हैं, इनके उदाहरण लिथोसोल, जलोढ़ मृदायें व सूखी बालू हैं।

मृदाओं को कुछ मुख्य गुणों के आधार पर आगे भी कुछ वर्गों में विभाजित किया जाता है। किसी एक प्रकार की जलवायु में मृदा का वर्गीकरण दूसरे प्रकार की जलवायु में उससे भिन्न होता है।

1. **क्षेत्रीय मृदायें :** इन मृदाओं के गण को जलवायु एवं वनस्पति के क्षेत्रों के आधार पर उप–गणों में विभाजित किया जाता है तथा यह उपगण आगे वृहद् मृदा समूहों जैसे पॉडजोल, प्रेरी आदि में विभाजित किये जाते हैं। इस गण के मुख्य समूहों का संक्षिप्त वर्णन निम्न है।

पॉडजोल मृदायें : ये मृदायें पहले केवल ठण्डे तथा नम क्षेत्रों की ही विशेषता मानी जाती थी, लेकिन इनको उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में भी विकसित होते हुए देखा गया है। पॉडजोल नाम रूस के शब्द जोला से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ राख से है। इन मृदाओं के ए, संस्तर का रंग राख के समान भूरा होता है। कुछ क्षेत्रों में ये मृदायें अम्लीय व कड़े कणों वाले पैतृक पदार्थो पर विकसित होती देखी गयी हैं। ये तटीय क्षेत्रों और उच्च ऊँचाइयों में भी पाई जाती है। पॉडजोल मृदाओं में हल्की भूरी संस्तर के ऊपर कच्चे जीवांश पदार्थ की एक परत पाई जाती है। इस संस्तर में आयरन ऑक्साइड व जीवांश पदार्थ होने के कारण इसका रंग गहरा बादामी या लाल होता है। उष्ण कटिबन्धीय एशिया के देशों में जहाँ जीवांश पदार्थों का संचय अधिक होता है, ह्यूमस पॉडजोल प्रचुरता में पाये जाते हैं। ह्यूमस पॉडजोल प्रायः उच्च भौम जल–स्तर के प्रभाव में विकसित होते हैं और भौम जल पॉडजोल के समतुल्य होती है।

ये मृदायें बहुत अम्लीय तथा कणाकार में प्रायः मोटी होती हैं। ये प्रायः जंगलों में मिलती हैं तथा कृषि के दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। भारत में ये मृदायें उच्च ऊँचाइयों के हिमालय पर्वतों के कुछ भागों में पायी जाती है।

लाल पीली पॉडजोल मृदायें : इन मृदाओं का 'ब' संस्तर लाल से पीले रंग का होता है। इसमें गीलेपन के चिह्न नहीं होते और पॉडजोल मृदाओं की अपेक्षा कुछ शुष्क जलवायु को छोड़कर समान परिस्थितियों मे विकसित होती है। ये मृदायें लैटराइटी लाल दोमट की तरह ही वर्णित की गई है और कभी–कभी इसे भौम जल लैटराइट भी कहते हैं। ये मृदायें प्रायः वनों में मिलती है।

भूरी पॉडजोल मृदायें : इनके 'ब' संस्तर में विभिन्न प्रकार के कण पाये जाते हैं तथा इनमें विभिन्न गहराइयों पर कंकड़ मिलते हैं। भूरी पॉडजोल मृदायें अधिकतर पुरानी जलोढ़ मृदाओं की वेदियो (टेरेसेस) पर पायी जाती हैं। ये नम शुष्क जलवायु में मिलती है। ये प्रायः उष्ण कटिबन्धीय एशिया के देशों में पायी जाती है।

लैटोसोल : लैटोसोल में वे मृदायें सम्मिलित हैं जो कि पहले लैटेराइटी मृदाओं में वर्गित (ग्रुप्ड) थीं। वे मृदायें जो उष्ण कटिबन्धीय और भूमध्यरेखीय प्रदेशों में विकसित होती है और जिनमें जल निकास अच्छा हो व संस्तरों की पहचान ठीक से न हो, लैटोसोल के अन्दर आती है। इनके मुख्य गुण इस प्रकार हैं– (1) जीवांश पदार्थ की मात्रा कम होती है, (2) प्राथमिक खनिज भी कम पाये जाते हैं तथा (3) सिलिका/सैस्क्वी ऑक्साइड अनुपात भी कम होता है। लैटोसोल साधरणतया क्षारीय पैतृक पदार्थ जैसे डायोराइट, बैसाल्ट व एन्डेसाइट आदि से बनते हैं। इन मृदाओं का रंग पैतृक पदार्थ की किस्म, जलवायु व उठान (एलिवेशन) के अनुसार लाल से बादामी व पीलापन लिए होता है। इन मृदाओं की भौतिक दशा अच्छी व कटाव रोकने की शक्ति अधिक होने के कारण कृषि के लिये उपयुक्त समझा जाता है। ये अधिकतर उष्ण कटिबन्धीय देशों ताइवान और भारत में पायी जाती है।

C M K

चर्नोजेम

ये मृदायें रूस, उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, जर्मनी, हंगरी, अर्जेन्टीना, तथा एशिया में पाई जाती है। इसी रूसी शब्द शेरनोजम का अर्थ काली मृदा से होता है। भारत में यह दक्षिणी पठारों तथा मध्य भारत में पाई जाती है जो रेगुर या कपास की काली मिट्टी कहलाती है। ये मृदायें शुष्क, अर्द्धशुष्क तथा उप आर्द्र जलवायु के स्टेपीज क्षेत्रों में बनती है। इनमें कैल्शियम की मात्रा काफी होती है, जिसके कारण यह मृदायें उदासीन या निर्बल आम्लिक प्रकृति वाली होती है।

चेस्टनट एवं बादामी मृदायें : ये मृदायें उष्ण जलवायु के शुष्क प्रदेशों में बनती हैं, जहाँ पर वर्षा 10"–15" तक होती है इनकी वनस्पति छोटी–छोटी घास होती है। इनमें जीवांश पदार्थ कम होते हैं, इसलिये ह्यूमस पदार्थ का संस्तर पतला होता है। ऊपरी सतह के निकट कैल्शियम कार्बोनेट की परत मिलती है।

रेगिस्तानी मृदायें : ये मृदायें हल्के रंग की होती है, इनका अपरदन हवा व पानी द्वारा होता है। इनके बनने में भौतिक अपक्षय का मुख्य हाथ है। ये भारत के उजड़े भागों में मिलती है।

2. अन्तः क्षेत्रीय मृदायें

इन मृदाओं के गण को तीन उपगणों में विभाजित किया गया है।

(क) **हाइड्रोमॉर्फिक मृदायें :** इनमें नमी का आधिक्य होता है तथा जल निकास पूर्णरूप से विकसित नहीं होता है, इसलिए पानी का रिसना नहीं होता। इसके उदाहरण भौम जलीय पॉडज़ोल, अर्द्धबोग तथा बोग मृदायें शीतोष्ण क्षेत्रों की हैं। इनमें बिना सड़ा हुआ जीवांश पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। इनके संस्तरों में लाल, पीला या बादामी रंग की धारायें मिलती है। नम क्षेत्रों में इस मृदा के दो समूह वीसनबोडन तथा प्लानोसोल होते है। वीसनबोडन मृदायें घास के क्षेत्रों में तथा प्लानोसोल मृदायें जंगलो में मिलती है।

(ख) **हैलोमॉर्फिक मृदायें :** शुष्क प्रदेशों में जल निकास की कमी से सतह पर लवणों का सान्द्रण बढ़ जाता है। इन मृदाओं के गुणों पर लवणों के प्रभाव के कारण इन्हें हैलोमॉर्फिक मृदायें कहते हैं। सोलनचक या लवणीय मृदायें सोडियम, कैल्शियम, मैग्नेशियम तथा पोटाशियम के विलेय लवणों में एकत्रित होने से बनती है। इनमें क्लोराइड, सल्फेट तथा कुछ कार्बोनेट एवं बाइकार्बोनेट ऋणायन्स मिलते हैं, इन्हें सफेद क्षारीय मृदायें भी कहते हैं।

(ग) **कैल्सीमॉर्फिक मृदायें :** इन मृदाओं के पैतृक पदार्थ में चूना की अधिक मात्रा होती है। इसमें दो समूह बादामी जंगली मृदायें तथा रेंडजिना होते हैं। दोनो समूहों की मृदाओं की सतह उदासीन होती है। बादामी जंगली मृदाओं का रंग सतह पर गहरा बादामी तथा रेंडजीना का रंग हल्का होता है। इस मृदा में अपरदन अधिक होता है।

3. अक्षेत्रीय मृदायें :

इनकी विशेषतायें जलवायु या किसी मृदा निर्माण की प्रक्रम से निर्धारित नहीं होती, परन्तु इनकी विशेषतायें इनके पैतृक पदार्थ की प्रकृति से प्रभावित होती है। इनमें साधारणतया तीन समूह लिथोसोल, रिंगोसोल तथा जलोढ़ होते है।

(क) **लिथोसोल :** ये अपूर्ण अपक्षयित चट्टानों की अधिकता वाली बहुत उथली मृदायें हैं। ये प्रायः सीधे ढलानों पर पायी जाती है, जहां मृदा के लिये वास्तविक पैतृक पदार्थ या अन्य का बिल्कुल संचय नहीं होता है।

(ख) **रिंगोसोल :** इन मृदाओं में भी प्रोफाइल अच्छी तरह से विकसित नहीं होती है। ये बिखरे हुए पदार्थो जैसे ज्वालामुखी की राख, मलवा व रेत टिब्बा (सैन्ड डून्स) से बनी होती है।

(ग) **जलोढ़ :** ये मृदायें पानी द्वारा लाये गये पदार्थो से बनती है। इनमें संस्तरों का विकास पूर्णरूप से नहीं हो पाता। प्रायः इन मृदाओं का जल निकास अच्छा नहीं होता है। इनका रंग भूरा होता है। ये मृदायें भारत में सिन्धु, गंगा के मैदान में मिलती हैं। ये मृदायें कृषि के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

2.2.2 मृदा वर्गीकरण– 7वाँ सन्निकटन

वर्गीकरण की पहली पद्धतियों की कमियाँ निम्नलिखित है :

1. कुछ मृदायें एक या अधिक संवर्ग स्तर पर किन्हीं भी वर्गों के अनुकूल नहीं होती।
2. प्रत्येक संवर्ग स्तर पर केवल एक वर्ग में एक मृदा को अनुकूल बनाने के लिये परिभाषायें सदैव निश्चित नही होती।
3. कुछ संवर्ग स्तर पर बहुत उपयोगी नहीं होते हैं।
4. कुछ मृदा समूह तक्र संगत नहीं होते हैं।

नई पद्धति यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में मृदा निर्माणकारी क्रियाओं तथा कारकों पर आधारित न होकर स्पष्टतः मृदा के मापित गुणों पर आधरित है परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मृदा उत्पत्ति उपेक्षित है। वास्तव में मृदा के गुण प्रायः मृदा उत्पति से सम्बन्धित होते हैं। इसमें वर्गीकरण हेतु मृदा के सभी प्रमुख भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों तथा मृदा नमी, ताप, गहराई, कणाकार संरचना, कार्बनिक पदार्थ, क्ले, आयरन, एल्युमिनियम के ऑक्साइड, पी.एच., प्रतिशत बेस संतृप्त तथा विलेय लवण सान्द्रण आदि पर विचार किया जाता है।

7वाँ सन्निकटन वर्गीकरण पद्धति के महत्व

1. यह मृदा निर्माण की प्रक्रियाओं की अपेक्षा मृदा वर्गीकरण को स्वीकृति देती है।
2. यह पद्धति मृदा से सम्बन्धित विज्ञानों, जैसे भूगर्भ विज्ञान तथा जलवायु सम्बन्धी विज्ञान की अपेक्षा मृदा पर ही केन्द्रीभूत होती है।
3. यह अज्ञात उत्पति वाली मृदाओं के वर्गीकरण का भी अनुमोदन करती है, इसके लिये केवल मृदा गुणों के ज्ञान की आवश्यकता है।
4. यह पद्धति विभिन्न वैज्ञानिक द्वारा प्रयुक्त वर्गीकरणों में अधिक समानता दर्शाती है।

2.2.3 भारत की मृदायें

भारत में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की मृदाओं को मोटे तौर पर इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : (1) लाल और पीली (2) लाल दोमट (3) लाल बजरीली (gravelly) (4) लैटराइट (5) लैटेराइट (पुरानी जलोढ़) (6) गहरी काली या रेगुर (regur) (7) नीस (geneissic) से निर्मित और ट्रेप की मध्य काली (8) कम गहरी काली (9) काली (अविभेदित) (10) मिश्रित लाल और काली (11) जलोढ़ (12) समुद्रतटीय जलोढ़ (13) सिन्धु, यमुना और गंगा के मैदानों में धूसर और भूरी मिट्टी जिसमें लवण विभिन्न मात्रा में मिश्रित रहते हैं (14) गंगा की जलोढ़ (कंकरीली) (15) लवणीय और क्षारीय (16) मरूस्थली (धूसर) (17) मरूस्थली (भूरी) (18) स्केलेटल (skeletal) (19) वनों एवं पर्वतों की (अविभेदित) (20) पतझड़ी वनों की भूरी मिट्टी (21) पहाड़ी, चरागाही (22) राख मृदा (podsoised) (23) हिमनद और शाश्वत हिम (glaciers and eternal snow) (24) भावर तराई सहित उप–पर्वतीय प्रदेश की मृदा तथा (25) पीट

जलवायु, मिट्टी और उसकी उर्वरता पर किसी भी देश की सुख–समृद्वि निर्भर होती है। भारत 8° से 37° उत्तरी अक्षांश और 67° से 97° पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य स्थित है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 3287.3 लाख हैक्टेयर है। यहाँ की वनस्पति, जलवायु, चट्टानें और स्थलाकृति में काफी विभिन्नता पायी जाती है। इन्हीं विशेषताओं ने समय–समय पर अनेक प्रकार की मिट्टियों को जन्म दिया है।

गोविन्दराजन (1965) एवं दत्ता विश्वास (1968) ने भारत का मृदा मानचित्र तैयार किया, उसमें उन्होंने देश को 25 वृहद् मृदा समूहों में वर्गीकृत किया जिसे उनके वितरण एवं सातवाँ सन्निकटन वर्गीकरण पद्धति के अनुसार समतुल्य मृदा वर्गों को तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1: विभिन्न मृदा वर्गों का वितरण तथा उनकां नवीन वर्गीकरण के अनुसार समतुल्य वर्ग

क्र.सं.	मृदा वर्गीकरण इकाई	क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	वितरण (राज्य)	सातवाँ सन्निकटन वर्गीकरण पद्धति के अनुसार समतुल्य वर्ग
1.	लाल दोमट मृदायें (Red loamy soils)	213271	आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा	पेल्यूस्टल्फ (Paleustalfs) रोडुस्टल्फ (Rhodustalfs) हेप्लुस्टल्फ (Haplustalfs)
2.	लाल बलुई मृदायें (Red sandy soils)	330590	तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश	हेप्लुस्टल्फ, रोडुस्टल्फ
3.	लेटराइट मृदायें (Laterite soils)	130066	तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गोआ, आसाम	(Plinthuaquults)प्लिन्थऐक्वल्ट (Plinthustults) प्लिन्थस्टल्ट (Plinthudtults) प्लिन्थडल्ट (Oxisols) ऑक्सीसॉल
4.	लाल एवं पीली मृदायें (Red and yellow soils)	403651	मध्य प्रदेश, उड़ीसा	हेप्लुस्टल्टस (Haplustults) आक्रक्वल्ट (Ochrequults) रोडस्टल्ट (Rhodustults)
5.	उथली काली मृदायें (shallow black soils)	31532	महाराष्ट्र	अस्टॉर्थेन्ट (Ustorthents) अस्टोपेप्ट (Ustopepts)
6.	मध्यम काली मृदायें (medium black soils)	430383	महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात	पेलस्टर्ट (Pellusterts) क्रोमस्टर्ट (Chromeusterts) पेलुडर्ट (Pelluderts)
7.	गहरी काली मृदायें (deep black soils)	112060	महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, गुजरात	पेलस्टर्ट, क्रोमस्टर्ट पेलुडर्ट (Pelluderts)
8.	मिश्रित लाल एवं काली मृदायें (mixed red and black soils)	162255	कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश,	एल्फीसॉल (Alfisols) और वर्टीसोल (Vertisols) अविभाज्य रूप में संयुक्त
9.	सागर तटीय जलोढ़ मृदायें (coastal alluvium soils)	54403	तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात	हैप्लेक्वेण्ट (Haplaquents)
10.	सागर तटीय रेत	4534	उड़ीसा	अस्टीसैमण्ट (Ustipsamments)
11.	डेल्टाई जलोढ़ मृदायें (Deltaic alluvium soils)	87045	तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल	क्वार्टजीसैमण्ट (Quartzip-samments)

12.	जलोढ़ मृदायें खादर (नई जलोढ़) भाँगर (Bhangar) (पुरानी जलोढ़)	356720	उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, पश्चिम बंगाल, आसाम	हैप्लेक्वेण्ट, (Ustifluvents) अस्टीफ्लुवेन्ट (Udifluvents) युडीफ्लुवेन्ट हैप्लस्टल्फ (Haplustalfs)
13.	जलोढ़ मृदायें (उच्च चूनेदार)	13611	उत्तर–पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार	कैल्सीआर्थेन्ट (Calciarthid)
14.	चूनेदारसिरजैमिक (Zierozemic) मृदायें	45080	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान	कैल्सीआर्थिड (Calciorthents)
15.	धूसर भूरी (gray brown) मृदायें	101572	गुजरात, राजस्थान	कैल्सीआर्थिड
16.	मरूस्थलीय (desert) मृदायें रिगोसोलिक (Regosolic)	154423	राजस्थान, हरियाणा	कैल्सीआर्थिड, सैमेण्ट (Psamments)
17.	लिथेसोलिक (Lithosolic)			लिथिक एण्टीसॉल (Lithic Entisols)
18.	तराई (Trai) मृदायें	28919	उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल	हैप्लेक्वॉल (Haplaquolls)
19.	भूरी पर्वतीय (brown hill) मृदायें	81242	उत्तर प्रदेश, भूठान, सिक्कम, हिमाचल प्रदेश,	पैलेह्यूमल्ट (Palehumults)
20.	उप–पर्वतीय (Submmtane) मृदायें	76695	उत्तर प्रदेश, जम्मू कश्मीर	हैप्लअडल्फ (Hapludalfs)
21.	पर्वतीय घास स्थलीय (mountain meadow) मृदायें	59790	कश्मीर लद्दाख सहित	क्रियोबारॉल (Cryoborols) क्रियाक्रेप्ट (Cryochrepts)
22.	लवणीय एवं क्षारीय मृदायें	17377	उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु	सेलार्थिड (Solarthids) सेलार्जिड (Solargids) नैट्रार्जिड (Natrargids), कुछ एण्टीसॉल और वर्टीसॉल मिट्टियाँ भी सैलिक या नैट्रिक
23.	पीटीय (Peaty) एवं लवणीय पीटीय मृदायें	2720	केरल, पश्चिम बंगाल	हिस्टोसॉल (Histosols)
24.	स्केलेटल (Skelatal) मृदायें	79151	मध्य प्रदेश	लिथिक एण्टीसॉल (Lithic) Entisols)
25.	हिमनद एवं शाश्वत हिम	29325	उत्तर प्रदेश, जम्मू कश्मीर	

भू–वैज्ञानिकों ने इनमें से कुछ मृदाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है जो निम्न हैं –

1. सिन्धु गंगा के मैदानों की जलोढ़ मृदायें।
2. कपास की काली मृदा तथा रेगुर मृदा।
3. लाल मृदायें जिनमें लाल दोमट एवं पीली मृदा आदि सम्मिलित है।
4. लेटराइट एवं लेटराइटिक मृदायें।
5. वनों एवं पर्वतीय क्षेत्रों की मृदायें।
6. शुष्क एवं रेगिस्तानी मृदायें।
7. लवणीय एवं क्षारीय मृदायें।
8. पीट एवं अन्य कार्बनिक मृदायें।

1. सिन्धु गंगा की जलोढ़ मृदायें (Indo Gangetic alluvial soils)

ये भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण और उर्वर मृदायें हैं। भारत में इन मृदाओं का क्षेत्रफल लगभग 5,70,000 वर्ग किलोमीटर है। भारत के दक्षिणी, उत्तरी पश्चिमी एवं उत्तरी पूर्वी भागों : पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, ब्रह्मपुत्रा, कृष्णा, गोदावरी, कावेरी तथा सुरमा (दक्षिणी आसाम की सुरमा घाटी) नदियों की सम्पूर्ण घाटियों में भी पाई जाती है। मध्य प्रदेश की नर्मदा, ताप्ती नदियों की घाटियों में मिलती है। इन मृदाओं की गहराई अत्यधिक होती है।

भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस मृदा को दो बड़े भागों में बाँटा गया है – पुरानी एवं नई जलोढ़ मृदायें। पुरानी जलोढ़ को स्थानीय भाषा में बाँगर कहते हैं। इसका रंग हल्का तथा संगठन कम कंकरीला तथा बलुई होती है। नई जलोढ़ को खादर कहते हैं, इनमें क्ले की प्रधानता पायी जाती है।

2. कपास की काली मृदायें (Black cotton soils)

भारतीय मृदाओं का यह दूसरा प्रमुख समूह है तथा इनका क्षेत्रफल लगभग 2,00,000 वर्ग मील है। ये दक्षिण भारत में दक्षिणी आधे भाग, दक्कन के पठार, महाराष्ट्र के एक बड़े भाग, मध्य प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश के पश्चिमी भाग तथा रामनन्द और तिन्नेवेली जिलों सहित तमिलनाडु के कुछ भागों में फैली हुई है। इन मृदाओं को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है– (क) गहरी और भारी काली मृदायें (ख) मध्य और हल्की काली मृदायें और (ग) रेगुर क्षेत्र में होकर बहने वाली नदियों की घाटियों की काली मृदायें।

इन मिट्टियों की विशेषतायें इस प्रकार हैं : (1) इनकी गहराई एक से दो फीट तक होती है, (2) कणाकार में ये दोमट से लेकर क्ले तक होती है, (3) ये अत्यधिक सघन, दृढ़ तथा कुछ–कुछ कंकरीली होती हैं, (4) गीली मिट्टी चिपचिपी होती है, गर्मियों में जल के अधिक मात्रा में वाष्पीकरण होने से इनमें सिकुड़न होने लगती है, जिससे बड़ी–बड़ी तथा गहरी दरारें पड़ जाती है, (5) इन मृदाओं में लोहा, कैल्शियम कार्बोनेट और मैग्नेशियम कार्बोनेट की अत्यधिक मात्रा होती है, (6) इन मृदाओं में मॉन्टमोरिल्लोनाइट तथा वीडेलाइट समूह के खनिज की मात्रा अधिक होती है तथा कपास की खेती के लिये उपयुक्त होती है, (7) इनमें नाइट्रोजन, कार्बनिक पदार्थ तथा फॉस्फोरस की मात्रायें कम तथा पोटाश और चूना की मात्रा अधिक होती है, (8) इनकी जल धारण क्षमता अधिक होती है।

3. लाल मृदायें (Red soils)

भारत की लाल मृदायें, लाल दोमट तथा पीली मृदाओं का क्षेत्रफल लगभग 2,00,000 वर्गमील है। यह मृदायें अधिकतर तमिलनाडु, मैसूर, उड़ीसा, मुम्बई के दक्षिण–पूर्वी भाग में तथा मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग तथा छोटानागपुर में पायी जाती है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर, झाँसी, बांदा, हमीरपुर जिले में, बंगाल के बीरभूम तथा बांकुड़ा जिले, राजस्थान में अरावली की पहाड़ियों में पायी जाती है। इनकी उत्पति ग्रेनाइट, नीस (gneiss) तथा सिस्ट (schists) आदि खनिजों से हुई है। रचनात्मक आधार पर इन मृदाओं को दो भागों में विभाजित किया है :

(क) लाल दोमट : इन मृदाओं का संरचना ढेलेमय (cloddy) होती है। इनमें कुछ संघित पदार्थ (concretionary material) भी पाये जाते हैं।

(ख) लाल मृदा : इनकी संरचना चूर्णीय तथा ढीली होती हैं। इन मृदाओं में लोहा तथा एल्युमिनियम ऑक्साइड के अधिक मात्रा में संचय होने से संचित पदार्थ अधिक होते हैं।

लाल मृदाओं की विशेषतायें इस प्रकार हैं : (1) कणाकार हल्का एवं भुरभुरी संरचना (2) चूना कंकड़ तथा स्वतन्त्र कार्बोनेट की अनुपस्थिति, (3) विलेय लवणों की अल्प मात्रा में उपस्थिति जिनकी मात्रा 0.05% से अधिक नहीं होती है, (4) मृदा अभिक्रिया उदासीन से अम्लीय, (5) नाइट्रोजन, ह्युमस, फॉस्फोरस एवं चूने की कमी।

4. लेटराइट और लैटराइटिक मृदायें (Laterite and lateritic soils)

इन मृदाओं का भारत में कुल क्षेत्रफल लगभग 1,30,066 वर्ग कि.मी. है। लेटराइट विशेषकर दक्षिण की पहाड़ियों की चोटी पर मध्य भारत और मध्य प्रदेश में, राजस्थान की पहाड़ियों और पूर्वी घाटों पर, उड़ीसा के कुछ मैदानों में, महाराष्ट्र मालाकर और आसाम में अच्छी विकसित हुई है। यह काफी वर्षा तथा नमी और सूखा की एकान्तर स्थितियों में पैदा होती है। इन मृदाओं की विशेषता यह है कि इनकी निचली परत एल्युमिनियम और आयरन के जलयोजित ऑक्साइडों के मिश्रण से बने कंकड़ों की होती है। इन मृदाओं में पोटाश, फॉस्फोरस एवं चूने की कमी होती है। ऊँचे क्षेत्रों में मृदायें बहुत पतली एवं बजरीली होती है परन्तु निचले स्थान और घाटियों में ये भारी दोमट से क्ले तक होती है और इनमें विशेषकर धान की फसल अच्छी प्रकार उगायी जा सकती है।

5. वनों एवं पर्वतीय क्षेत्रों की मृदायें (Forest and hill soils)

भारत के कुल क्षेत्र का लगभग 14% भाग वनों से घिरा हुआ है। वनों की मृदाओं का निर्माण वृक्षों एवं वनस्पतियों से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ के संचय से होता है। विशेष रूप से इन मृदाओं में दो प्रकार की मृदा निर्माण की प्रक्रम होती हैं : (1) निम्न भस्म स्तर और अम्लीय ह्यूमस की उपस्थिति में अम्लीय दशाओं में निर्मित मृदायें। यह दशायें पॉडजोल निर्माण में सहायक हैं। (2) उच्च भस्म स्तर और कम अम्लीय या उदासीन दशाओं में निर्मित मृदायें जो भूरी मृदा निर्माण के लिये उपयुक्त समझी जाती है। इस क्षेत्र की मृदा क्ले लोम, और बलुई लोम है। लोम में चूने की मात्रा कम या अधिक या अनुपस्थित हो सकती है। असम के पर्वतीय जिलों की मृदायें महीन कण वाली है तथा इनमें कार्बनिक पदार्थ तथा नाइट्रोजन की मात्रा नई होने के कारण अधिक होती है। इनमें यांत्रिक रासायनिक संगठन में बड़ी भिन्नता पाई जाती है।

6. शुष्क एवं रेगिस्तानी मृदायें (Arid and desert soils)

ये मृदायें शुष्क तथा अधिक शुष्क प्रदेशों में पायी जाती है। इस प्रकार की मृदायें राजस्थान, काठियावाड़, दक्षिणी पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों जैसे आगरा, मथुरा के कुछ भागों में पायी जाती है। राजस्थान के मरूस्थल (क्षेत्रफल लगभग 40,000 वर्ग मील) यद्यपि दक्षिणी–पश्चिमी मानसून हवाओं के क्षेत्रों में है, वर्षा के अभाव के कारण इन प्रदेशों की जलवायु शुष्क रहती है। इन क्षेत्रों में लीचिंग की अपेक्षा वाष्पीकरण अत्यधिक होता है जिससे विलेय लवण ऊपर आ जाते हैं तथा मृदाओं का पी.एच. अधिक हो जाता है। मुख्य रूप से ये मृदायें बलुई होती है। इनमें जल तथा जीवांश पदार्थ अल्प मात्रा में पाया जाता है और यह बहुत कम उपजाऊ होती है। इनमें कैल्शियम कार्बोनेट की विभिन्न मात्रायें पायी जाती हैं। इन मृदाओं में बाजरा, ज्वार, आदि पैदा होते हैं।

7. लवणीय एवं क्षारीय मृदायें (Saline and alkali soils)

यह विशेष रूप से पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान में पायी जाती है। इन्हें अलग–अलग नामों – रेह, कल्चर और ऊसर से पुकारते है। इन मृदाओं की ऊपरी सतह पर भुरा सफेद रवेदार जमाव मुख्य रूप से सोडियम, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के लवणों के कारण होते हैं। गर्मियों में विलेय लवण निचली सतहों से केशिका के द्वारा ऊपरी सतह पर आकर इकट्ठे होने लगते हैं। रेह में कैल्शियम और मैग्नीशियम लवणों के अतिरिक्त सोडियम के कार्बोनेट, सल्फेट तथा क्लोराइड्स होते हैं। अवमृदा के कंकड़ की एक कठोर परत मिलती है। क्षारीय मृदाओं में कैल्शियम तथा नाइट्रोजन का अभाव रहता है।

8. पीटी एवं दलदली मृदायें (Peaty and marshy soils)

ये मृदायें ट्रावनकोर, कोचीन, केरल, उड़ीसा के समुद्री किनारों पर, सुन्दर वन डेल्टा तथा बंगाल के अन्य स्थानों पर, बिहार के

मध्य भाग में, तराई में उत्तरांचल के अल्मोड़ा जिले में, मद्रास के दक्षिण–पूर्व किनारों पर पायी जाती है। ये मृदायें नम जलवायु में बनती है। इन प्रदेशों में अधिक कार्बनिक पदार्थों के इकट्ठा होने से इन मृदाओं का निर्माण होता है। कभी–कभी इसमें विलेय लवणों की पर्याप्त मात्रा भी मिलती है। नदियों और झीलों के निचले क्षेत्रों मे जलाक्रांति तथा अवायु दशाओं में मृदाओं का निर्माण होता है। इसमें फेरस आयरन होने से प्रायः इनका रंग नीला होता है। ये काली, भारी तथा अम्लीय मृदायें होती है। मानसून पी. एच. लगभग 4 तथा कार्बनिक पदार्थ 10–40 प्रतिशत तक होती है इनमें नाइट्रीकरण नहीं होता। मानसून के बाद धान उगाया जाता है।

2.2.4 बिहार की मृदायें

बिहार की मृदाओं को मुख्यतः दो भागों नें बाँटा गया है। उत्तरी बिहार की मृदा एवं दक्षिण बिहार की मृदा। इन मृदाओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है :

उत्तरी बिहार की मृदायें

1. **उप–हिमालय पहाड़ी एवं वन मृदायें :** यह मृदा राज्य के उत्तर पश्चिम किनारे (पश्चिम चम्पारण) में पाया जाता है। इन मृदाओं के ऊपरी परत में सड़े–गले कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। इनकी संरचना दानेदार तथा इनमें चूने की मात्रा कम होती है। इस मृदा का रंग भूरा होता है। इन मृदाओं की संस्तर अम्लीय होता है तथा चूना और कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम और मैग्नीशियम की मात्रा अधिक होती है। इसके कण समूह दानेदार हो सकते है परन्तु अधिकतम संरचनाहीन होते है।

2. **तराई की जलोढ़ मृदायें :** यह बिहार राज्य के ऊपर नेपाल के नीचे संकरा भाग है जो पश्चिम चम्पारण से लेकर राज्य के पूर्वोत्तर जिले तक पट्टिका के रूप में फैली हुई है। इस क्षेत्र को प्रायः भावर और तराई का प्रदेश कहते है। यहां वर्षा अधिक होती है तथा घास यहां बहुतायत मात्रा में पाई जाती है। इन मृदाओं का संरचना कणाकार क्ले लोम होता है तथा ऊपरी सतह में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा प्रचुर होने के कारण भूरा होता है। दूसरे संस्तर में कार्बनिक पदार्थ कम तथा कणाकार सिल्ट लोम होता है। इसका रंग हल्का पीला बादामी होता है। सम्पूर्ण प्रोफाइल में बालू की मात्रा कम होती है। इसकी जल–धारण क्षमता तथा भस्म विनिमय क्षमता अधिक होती है।

3. **हाल की जलोढ़ मृदायें :** ये मृदाये प्रायः चूना विहिन, लवण एवं क्षारीय विहिन होती है। यह मृदा बिहार के पूर्णिया, कटिहार, मधेपुरा, सहरसा, भागलपुर की उत्तरी भाग तथा खगड़िया जिला में पाया जाता है। इनका कणाकार ऊपरी सतह पर बलुई दोमट तथा नीचे की सतहों में भारी होता है। इसके ऊपरी संस्तर हल्का भूरे रंग का तथा नीचे के संस्तर भूरे होते हैं। इन मृदाओं की जल धारण क्षमता कम होती है। इसमें जैविक पदार्थ तथा नाइट्रोजन की मात्रा औसत से लेकर अधिक तक पाई जाती है।

4. **तरूण या यूवा चूनायुक्त जलोढ़ मृदायें :** यह मृदा चूना युक्त तथा लवण एवं क्षारीय विहीन होता है। यह बिहार के समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर, वैशाली, सीवान, गोपालगंज, सारण, चम्पारण तथा बेगुसराय जिला के उत्तरी भाग में पाया जाता है। इन मृदाओं में चूने की मात्रा अधिक होती है। ऊपरी सतह कणाकार दोमट तथा रंग गहरा भूरा बादामी होता है तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा मध्यम होती है। कार्बनिक पदार्थ तथा नाइट्रोजन की मात्रा अवमृदा में कम होती है। कुल फॉस्फोरस की मात्रा अधिक परन्तु प्राप्य फॉस्फोरस की मात्रा कम होती है। पी.एच. मान 8.3 से 8.5 तक होता है।

दक्षिणी बिहार की मृदायें

दक्षिणी बिहार में मुख्यतः तीन प्रकार की मृदायें होती हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है :

1. **टाल लैण्ड मृदा :** यह मृदा गंगा नदी के दक्षिण किनारे पर पाया जाता है। काले रंग तथा बहुत महीन कणाकार वाली टाल मृदायें पटना, लखीसराय, शेखपुरा जिले के गंगा नदी के निचले बेसिन में पायी जाती है। ये मृदायें निचले गहरे स्थानों पर स्थिर होती है। ये मृदायें जल सोखकर फूल जाती है तथा गर्मियों में सूखने पर सिकुड़ जाती है जिसके फलस्वरूप दरारे पड़ जाती है।

2. **पुरानी जलोढ़ दरार युक्त मृदायें :** यह मृदा बिहार के रोहतास, पटना, भोजपुर, गया, मुंगेर, नालन्दा, नवादा, भागलपुर तथा बांका जिलों में पायी जाती है। ये मृदायें विस्तृत रूप से धान की खेती में प्रयोग की जाती है। ये मृदायें बिहार के दक्षिण में गंगा के मैदान में पायी जाती है। इसका निर्माण दोषपूर्ण जल निकास तथा जल चक्र तत्वों के द्वारा मुख्य रूप से हुआ है। इसी कारण ये मृदायें लोम तथा क्ले लोम कणाकार होती है। इनकी प्रोफाइल कम गहरी होती है। पृष्ठ संस्तर लगभग 5–6 से.मी. मोटा होता है तथा रंग भूरा से गहरा पीला होता है।

3. पुरानी जलोढ़ लाल–पीली मृदायें : ये मृदायें प्रायः पहाड़ी तथा जलोढ़ मृदाओं को अलग करने वाली जगहो पर पायी जाती है। बिहार में ये मृदा मुख्यतः रोहतास से साहेबगंज के पूर्वी भाग में पाया जाता है। इनकी प्रोफाइल प्रायः बलुई होती है। ये मृदाये सूर्य से अधिकतम प्रकाश पाने वाले स्थानों पर होती है तथा ढाल पर होने के कारण सूखी बनी रहती है। ऊपरी संस्तर में कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में संचित रहती है। मृदाओं के नम होने पर इनका लाल भूरा रंग होना अधिक ह्यूमस खनिज को प्रकट करता है।

2.3 मृदा पार्श्वदृश्य (Soil Profile)

मृदा की बनावट एवं संरचना, मिट्टी जीवाणु, मृदा प्रतिक्रिया / पी०एच०

मृदा का अध्ययन करने के लिए ऊपरी धरातल या पृश्ठ से लेकर नीचे स्थित अनुतुक्षरित पदार्थ (Unweathered material) तक भूमि की उर्ध्वाधर अनुभाग या काट (Vertical cross section or cut) को सामूहिक रूप से मृदा पार्श्वदृश्य (Soil Profile) कहलाती है और विभिन्न परतें जो या तो स्पष्ट रूप से दिखाई देती है अथवा विश्लेषण द्वारा उनकी पहचान कर सकते हैं, संस्तरे (Horizons) कहलाती है।

जिन मृदाओं का पूर्ण विकास हुआ होता है उनके मृदा–पार्श्व दृश्य में अनेक संस्तरे दिखाई पड़ती है, जो एक–दूसरे से रंग, गहराई, कणाकार (texture), संरचना (structure), दृढ़ता तथा भौतिक एवं रासायनिक गुणों में भिन्न–भिन्न होती है ।

2.3.1 मृदा संस्तरे (Soil horizons)

अध्ययन तथा विवरण में सुविधा के लिए मृदा–पार्श्व को साधारणतया तीन प्रमुख शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है जिन्हें A, B, तथा C संस्तर कहते है । प्रथम दो A तथा B संस्तरों में काफी विकास होने पर इनमें 5 अथवा 6 उपसंस्तरे (Sub-horizons) पायी जाती है । इन संस्तरों में विभिन्नता के आधार पर इनके आगे A_1, A_2, A_3 इत्यादि बनाये गये हैं। मौलिक पदार्थो के ऊपर स्थित "A" तथा "B" संस्तरों को मिलाकर सोलम (Solum) कहते है । सोलम तथा मौलिक पदार्थ दोनों को मिलाकर आवरण प्रस्तर (Regolith) के नाम से पुकारते हैं । मौलिक पदार्थ के ठीक नीचे मौलिक चट्टान आती है इसे शैल संस्तर (bedrock) या डी संस्तर (D-horizon) भी कहते हैं ।

1. 'ए' संस्तर या एल्यूवियल संस्तर

'A' Horizon or alluvial horizon

यह मृदा–पार्श्व का सबसे उपर का संस्तर है, जो एल्यूवियल अथवा 'A' स्तर (horizon) कहलाता है । इस संस्तर में पेड़–पौधों की पत्तियाँ, तने तथा जड़ें इत्यादि अपघटित कार्बनिक पदार्थ उपस्थित होते हैं । इस संस्तर की गहराई परिवर्तनशील होती है जो विभिन्न मृदाओं में आमतौर पर 2 से.मी. से 80 से.मी. तक पायी जाती है । इस परत में अधिकतम परिच्यवन (Leaching) होता है जिससे कार्बनिक पदार्थ तथा सेस्कवी ऑक्साइड्स जल के साथ बहकर नीचे के संस्तरों में चला जाता है अथवा वर्षण (Precipitation) से नीचे के संस्तरों में एकत्रित हो जाते हैं। अतः इसको परिच्यवित संस्तर (Leached horizon) के नाम से भी कहा जाता है ।

वर्षा का जल जब इस मृदा पर पड़ता है तो मृदा के A संस्तर में उपस्थित अनेक प्रकार के घुलनशील लवण, तत्व, कार्बनिक पदार्थ एवं मृदा के सूक्ष्म कण जल के साथ ऊपर से नीचे की ओर निक्षालित होकर चले जाते हैं । वह प्रक्रिया जिसके साथ अनेक प्रकार के लवणं, तत्व, अवयव, कार्बनिक पदार्थ एवं सूक्ष्मकण घुलकर ऊपरी संस्तर से नीचे तहों में चले जाते हैं । अवक्षालन (Eluviation) कहलाता है । अवक्षालन की प्रक्रिया भारी वर्षा वाले प्रदेशों में अधिक होती है यह मृदा का सबसे ऊपरी भाग होता है । यही कारण है कि इसे पृष्ठ मृदा (Surface Soil) कहते है । सामान्यतया इसी पदार्थ तक फसलों की जड़ें पहुँच कर खाद्य पदार्थ ग्रहण करती है और इसी मृदा में भू–परिष्करण क्रियाएँ की जाती है । अतः इस संस्तर को सामान्य मृदा (Normal Soil) कहते है।

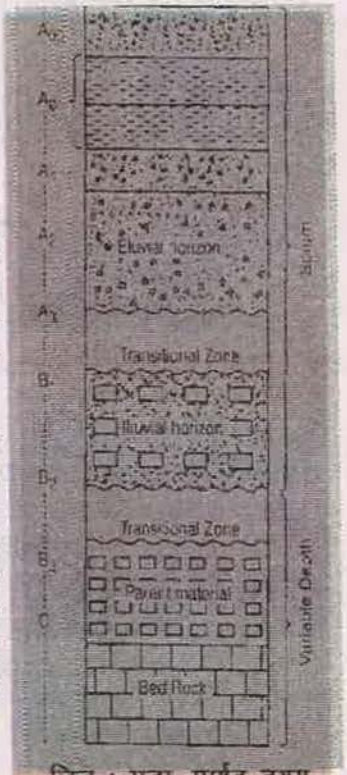

चित्र : मृदा–पार्श्व दृश्य

इन संस्तरों को पुनः Aoo, Ao, A_1, A_2 एवं A_3 उप–संस्तरों (Sub horizons) में बांटा जा सकता है ।

A_{oo} उप–संस्तर (A_{oo} Sub-horizon)

इस उपसंस्तर में पेड़–पौधे को बिना सड़े गले अर्थात् अविघटित कार्बनिक पदार्थ विघटन के रूप में काफी मात्रा में पाये जाते है।

A_o उप–संस्तर (A_o Sub-horizon)

इस उप संस्तर में केवल अधसड़ा जीव–पदार्थ पाया जाता है ।

A_1 उप–संस्तर

यह गहरे रंग का खनिज पदार्थों का तीसरा उप–संस्तर है । इसमें काला रंग कार्बनिक पदार्थ के कारण पैदा हो जाती है । इस संस्तर में क्षारकों की प्रचुरता रहती है जो ह्युमस के साथ मिश्रित अवस्था में पाये जाते है ।

A_2 उप–संस्तर

यह काफी विकसित हल्के रंग का उप–संस्तर है । इसका निर्माण अपक्षालन (Leaching) विरंजण (Blenching) एवं अपवाहन (Eluviation) अभिक्रिया द्वारा मूल पदार्थों के आंशिक रूप से बाहर निकल जाने के कारण होता है । यह A_1 की अपेक्षा हल्के रंग का होता है और पौडजोल मृदाओं में स्पष्ट दिखाई देता है ।

A_3 उप–संस्तर

यह अन्तरवर्ती परत (transitional layer) है जो मृदाओं में बहुधा अनुपस्थित होती है ।

1. बी संस्तर, अवमृदा (B-horizon, Sub-Soil)

A संस्तर के ठीक नीचे पाया जाने वाला B संस्तर होता है । इसलिए इसे अधः अथवा अव–मृदा (Sub soil) भी कहते है । यह संचयन–स्तर (Horizon of accomulation) कहलाता है । इस संस्तर में A संस्तर से निक्षालित पदार्थ संचित होते है । यह स्तर संचयन की मात्रा के अनुसार B_1, B_2 एवं B_3 संस्तरों में बॉटा गया है । इस संस्तर को अमृदा (Sub Soil) कहते है ।

2. सी संस्तर अथवा पैतृक पदार्थ (C-horizon or Parent Material)

इस संस्तर में कम विघटित एवं उपक्षयित मूल पदार्थ पाए जाते हैं। यह भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में A तथा B के समान भी हो सकते हैं अथवा भिन्न भी हो सकता है । C संस्तर के नीचे संगठित एवं दृष्टिभूत चट्टानें पाई जाती है जो आधार चट्टाने (Bed Rock) कहलाते हैं । आधार चट्टानों के ऊपर जो भी असंगठित एवं अदृष्टिभूत, कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं, एक साथ संयुक्त रूप में आवरण प्रसार या रिगोलिथ (Regolith) कहलाते हैं ।

3. डी संस्तर या पैतृक चट्टान (D-horizon or Parent Rock)

यह सबसे निचला ठोस संघटित चट्टानों का संस्तर है जो प्रायः पूर्णतः अविघटित होता है ।

मृदा पार्श्व का अध्ययन (Study of soil profile)

मृदा पार्श्व का अध्ययन निम्नलिखित मृदा के गुणों को जानने के लिए किया जाता है :

(i) रंग (colour)

(ii) मृदा कणकार (Soil texture)

(iii) मृदा संरचना (Soil structure)

(iv) मृदा पार्श्व की गहराई (Depth of soil profile)

2.3.2 मृदा की बनावट एवं संरचना (Soil Texture and Structure)

मृदा–गठन (Soil Texture)

मृदा – गठन (Soil Texture) उस स्थिति को कहते हैं जिसमें मृदा में रेत, सिल्ट तथा चिकनी मिट्टी की मात्रा या प्रतिशत होती है। मृदा छोटे–छोटे कणों (particles) की बनी होती है । भूमि बनाने वाले ये सब कण एक ही आकार के न होकर छोटे–बड़े होते हैं । मृदा–कणों का यह सापेक्षिक आकार (Relative size) मृदा–गठन (Soil texture) कहलाता है । अतः मृदा का गठन विभिन्न प्रकार के कणों का सापेक्ष अनुपात (Relative proportion) है । भूमि में होने वाली अनेक आवश्यक भौतिक और रासायनिक प्रतिक्रियाएँ (Reactions) मृदा के गठन से सम्बन्धित होती है । क्योंकि मृदा के गठन पर ही वाह्यतल निर्भर करता है जिसमें ये प्रतिक्रियाएँ सम्भव है । दूसरे शब्दों में मृदा में उपस्थित विभिन्न आकार के मृदा कणों, बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका (clay) की अपेक्षित मृदा को मृदा–गठन कहते हैं **"Soil texture refers to the relative proportion or percentage of various sizes of soil particles i.e. sand, silt and clay in a given soil".**

मृदा–कणों (Soil particles) को केवल उनके आकार के आधार पर विभिन्न वर्गों में बॉटा गया है । बालू के कण बड़े होते हैं और मृत्तिका (clay) के कण बहुत महीन, सिल्ट के कण इन दोनों के बीच के होते हैं । बालू सिल्ट और मृत्तिका को मृदा–कणवर्ग (Soil separate) कहा जाता है ।

मृदा–कणवर्ग का वर्गीकरण (Classification of soil separate)

मृदा के कणों की माप के आधार पर यह देखा जा सकता है कि अमुक मृदा में विभिन्न माप वाले कण किस अनुपात में उपस्थित है। मृदा–कणवर्ग का विभाजन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है।

मृदा–वर्गकणों को वर्गीकृत करने की मुख्य प्रणालियॉ (Main systems to classify soil separates)

संयुक्त राज्य अमेरिका कृषि विभाग प्रणाली		अन्तरराष्ट्रीय प्रणाली	
मृदा–कणवर्ग	व्यास (मि०मी)	मृदा–कण–वर्ग	मृदा–कण–वर्ग
बहुत मोटी बालू	2.0-1.0	मोटी बालू	2.0-0.20
मोटी बालू	1.0-05		
मध्यम बालू	0.5-0.25	महीन बालू	0.2-0.02
महीन बालू	0.25-0.10		
बहुत महीन बालू	0.10-0.05	सिल्ट	0.02-+0.002
सिल्ट	0.05-0.002		
मृत्तिका	<0.002	मृत्तिका	<0.002

विभिन्न देशों में वैज्ञानिकों ने मृदा में पाये जाने वाले प्रत्येक अंश की प्रतिशत मात्रा की एक उच्चतम एवं निम्नतम सीमा का निर्धारण किया है । यद्यपि अनेक देशों में विभिन्न वैज्ञानिकों ने गठन सम्बन्धी अनेक मृदा वर्गों का निर्धारण किया हे, परन्तु मृदा के सबसे बड़े तीन मृदा वर्ग (broad soil classes) निम्नलिखित हैं :

1. बलुई मृदायें (sandy soils) इस प्रकार की मृदाओं में 80% प्रतिशत बालू तथा 20 प्रतिशत सिल्ट एवं मृत्तिका होती है। बालू की मात्रा एवं प्रकार के अनुसार मोटी, मध्यम, महीन एवं अति महीन बालू मृदा होती है ।
2. चिकनी मृदायें (clayey soils) इन मृदाओं में 35% से अधिक मात्रा में चिकनी मृदा तथा शेष बालू या सिल्ट अथवा दोनों पदार्थ होते हैं । क्ले, बलुई क्ले या सिल्टी क्ले इत्यादि अनेक प्रकार की चिकनी मृदायें होती है ।
3. दोमट मृदायें (loamy soils) इनमें 45% से कम मात्रा में बालू, 30–50% सिल्ट तथा 20% मृत्तिका (क्ले) होती है।

मृदा गठन का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव (Effect of soil texture on plant growth)

अच्छा मृदा गठन पादप वृद्धि (plant growth) को प्रभावित करने वालें अनेक कारकों जैसे भूमि में उचित मात्रा में जल का होना

तथा मृदा जल गति (soil water movement) समुचित वातन (proper aeration), सुकार्यता (workability), पोषक तत्वों की उचित मात्रा में उपस्थिति, मृदा तापमान का होना इत्यादि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है ।

चिकनी मृदायें प्रचुर मात्रा में जल को अपने भीतर रोकती है और ऐसी मृदाओं में पौधों के पोषक तत्व भी काफी मात्रा में मिलते हैं और इसलिए ये अधिक उपजाऊ होती है । किन्तु भारी गठन वाली चिकनी मृदाओं में कृषि करना कठिन होता है और जल को मृदा कणों के ऊपर इतनी मजबूती से बाँधे रखती है कि जल की समान मात्रा उपस्थित होने पर भी बलुआई मृदाओं की अपेक्षा चिकनी मृदायें जल धीरे–धीरे अवशोषित करती है और इसलिए जल क्रान्त (water-logging) तथा हीन वातन (poor aeration) इन मृदाओं में पैदा हो जाती है । बलुई मृदायें अधिक प्रवेश्य (permeable) अच्छे जल–निकास तथा समुचित वातन वाली होती है, किन्तु ये कम मात्रा में जल रोकती है । परिणामस्वरूप ऐसी मृदाओं में प्रायः जल से सिंचाई करने की आवश्यकता पड़ती है । बलुई मृदाओं में पौधों के पोषक तत्वों का निक्षालन (leaching) सरलतापूर्वक हो जाता है और इसलिए इन मृदाओं की उर्वरा शक्ति कम होती है ।

मृदा–गठन के पादप–वृद्धि पर पड़ने वाले परिवर्तनशील प्रभावों के फलस्वरूप विभिन्न फसलों की सर्वोत्तम उपज प्राप्त करने के लिए मृदाओं के विभिन्न वर्गों की आवश्यकता होती है । उदाहरणार्थ – धान, जूट तथा ढैचा मृत्तिका दोमट (clay loam) तथा भारी मृदाओं में सर्वोत्तम उपज देते हैं, जबकि गेहूँ, चना तथा कपास की फसलें दोमट मृदाओं (clay loam) में अच्छी तरह से होती है । इसी प्रकार से मूँगफली, बाजरा तथा कन्द–मूल वाले फसलें (root crops) बलुआई दोमट मृदाओं (sandy loam) को पसन्द करती है।

2.3.3 मृदा संरचना (Soil structure) :

प्राकृतिक मृदाओं में साधारणतः रेत, सिल्ट तथा क्ले के प्राथमिक कण पाये जाते हैं । ये प्राथमिक कण व्यक्तिगत रूप से अलग–अलग न रहकर गोद, श्लेष्मक (mucilage) आदि संयोजी पदार्थो (cementing agents) के प्रभाव में परस्पर जुड़ कर कण पुँज, ढेले या मृदुकण (aggregates, clods or granules) बनाते हैं ।

इन कण पुँजों को संरचनात्मक पुँज (structural aggregates) या गौण अथवा द्वितीयक कण (secondary particles) कहते हैं । प्राकृतिक कण पुंजों को "पेडस" (peds) भी कहते हैं ।

मृदा में प्राथमिक तथा द्वितीयक कण अनेक प्रकार से व्यवस्थित होते हैं । व्यवहारिक दृष्टि से मृदा में उपलब्ध होने वाले व्यक्तिगत प्राथमिक तथा द्वितीयक कणों के निश्चित प्रतिरूप में व्यवस्था (arrangement) को "मृदा संरचना" (soil structure) कहते हैं ।

"The arrangement of individual primary soil particles and their aggregates (secondary particles) into certain defined patterns is called soil structure".

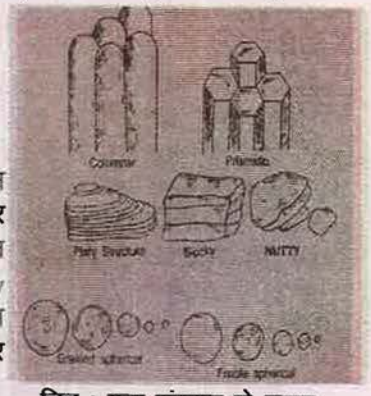

चित्र : मृदा संरचना के प्रकार

मृदा संरचना के चार प्रमुख प्रकार (types) निम्नलिखित हैं :

1. पट्टित संरचना (platy structure) इस संरचना में कण–पुँजों के क्षैतिज अक्ष (horizontal axis), ऊर्ध्वाधर अक्ष (vertical axis) की अपेक्षा अधिक विकसित होता है और प्राथमिक कण चपटे (flattend), दबे हुए (compressed) या लैंस (lens) के समान दृष्टिगोचर होते हैं । जब रचनात्मक इकाइयाँ मोटी होती है तो पट्टित संरचना (platy structure) कहलाती है और जब इकाइयाँ अत्यन्त पतली होती है तो स्तरीय संरचना (laminar structure) कहलाती है। इस प्रकार की संरचना में कण–पुंजों का आकार 1–10 मि०मी० होता है ।

2. प्रिज्मीय संरचना (Prismatic structure) इसमें कण–समूहों का आकार 10–100 मि०मी० होता है । इस प्रकार के संरचना मे कण–समूह उदग्र रूप (vertically oriented) से अनुपस्थित पाये जाते हैं । दो परिमाण (dimensions) वाले स्तम्भवत् (pillar like) दीख पड़ते हैं । कण–पुंजों (aggregates) का ऊर्ध्वाधर अक्ष (vertical axis) क्षैतिज अक्ष (horizontal axis) की तुलना में बड़ा होता है । ऊर्ध्वाधर भुजा तेज तथा चपटे किनारों (sharp & flattened edges) एवं चमकदार पृष्ठों वाली होती है । जब प्राथमिक कण का शीर्ष तथा किनारे गोलाकार होते हैं तो संरचना स्तम्भाकार (columnar) कहलाती है। यह संरचना तभी सम्भव है जबकि मृदा प्रोफाइल में परिवर्तन होता है और संस्तरे अपघटित होती है। प्रिज्मीय संरचना में शीर्ष चपटे (flat) होते हैं ।

3. ब्लाकी संरचना (Blocky structure)

इसमें कण–पुंजों का विकास तीनों दिशाओं, लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में करीब–करीब बराबर होता है । इस संरचना में पैड्स (peds) का आकार 5–50 मि०मी० होता है । यदि पैड्स की सतह चपटी तथा किनारे तेज (sharp) होते हैं तो ऐसी संरचना को कोणीय खण्ड (Angular blocky) कहते हैं । इसके विपरीत यदि सतह और किनारे गोलाकार होते हैं तो ऐसी संरचना को उपकोणीय खण्ड (Subangular blocky) कहते हैं । इस प्रकार की संरचना साधारणतः अनेक प्रकार की मृदाओं, अधो–मृदा (sub soil) अथवा बी संस्तर (B-horizons) में पायी जाती है ।

4. गोलाकार संरचना (Sphere like structure)

इस ढंग की संरचना में सभी कण–समूह पैड्स लगभग गोलाकार होते हैं और उनका आकार 1–10 मि०मी० होता है। इस संरचना की सतह अनियमित तथा मुड़ी होती है । इसका आकार ध्वेय होता है । इस संरचना को दो वर्गों में रखा जा सकता है ।

दानेदार संरचना (granular structure) में रन्ध्राकाश (porespace) कम होता है तथा मृदुकण संरचना (crumby structure) में रन्ध्राकाश बहुत अधिक होता है । दानेदार एवं मृदुकण संरचना उन मृदाओं में पायी जाती है जिसमें कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं एवं जिनमें मृदा प्रबन्धन (soil management) अधिक वैज्ञानिक ढंग से किया गया होता है ।

इस प्रकार के संरचना में बड़े एवं छोटे रन्ध्रों (macro and micro pores) का वितरण बराबर रहता है जिस कारण मृदा में जल निकास (drainage) वायु संचार (aeration), जल धारण क्षमता (water holding capacity) एवं मृदा ताप (soil temperature) उचित बना रहता है ।

मृदा संरचना का कृषि में महत्व (Importance of soil structure in Agriculture)

मृदा संरचना को मृदा की उत्पादकता एवं उर्वरता की कुंजी कहा जाता है। मृदा की अनेक भौतिक, रासायनिक तथा जीव–रासायनिक क्रियाएँ मृदा के वातन एवं जल संचरण पर आधारित है । मृदा संरचना के द्वारा ही वातन एवं जल संचरण नियंत्रित होता है । इस प्रकार से मृदा के अनेक भौतिक गुण जिसपर उत्पादकता एवं उर्वरता आधारित है जैसे – संरन्धता, जल अवशोषण, जल धारण, वायु का विसर्जन, वातन इत्यादि मृदा संरचना द्वारा नियंत्रित होते हैं ।

दानेदार मृदा संरचना कृषि के लिए सर्वोत्तम संरचना होती है । ऐसी संरचना से वातन एवं जल का संचरण अत्यधिक उपयुक्त होता है । प्लेटी संरचना स्वतन्त्र जल निकास के लिए उपयुक्त नहीं होती है ।

2.3.4 मृदा जीव (Soil organism)

मृदा एक सजीव पिंड है (living body) है, क्योंकि मृदा में पौधों एवं जन्तुओं के अनेक सूक्ष्म एवं बड़े प्राणी रहते हैं जो क्रियाशील हैं। उनमें से कुछ स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, परन्तु उनकी संख्या साधरणतया सीमित होती है । अन्य जीव आकार में अति सूक्ष्म होते हैं और नग्न नेत्रों से नहीं देखे जा सकते हैं । अतः उन्हें प्रबल सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही बढ़ाकर देखा जा सकता है । ऐसे सूक्ष्म प्राणी सूक्ष्म जीवाणु (micro organism) कहलाते हैं । सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या बड़े जीवों की अपेक्षा अधिक होती है। सूक्ष्म जीवाणुओं में बैक्टीरिया (Bacteria) फफूँद (fungi), शैवाल (Algae) तथा एकटीनोमाइसिटीज (Actinomycetes) आते हैं । मृदा के भीतर रहने वाले बड़े प्राणियों में कई प्रकार के कृमि (worm), कीड़े (insects), चूहे (rats), सूत्रकृमी (Nematode) आदि प्रमुख हैं ।

मृदा जीवों का वर्गीकरण (Classification of soil organism)

मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न जीवों का पादप तथा प्राणी समूहों में वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है ।

वनस्पति वर्ग के मृदा–जीवाणु (Soil organisms of plant nature)

जीवाणु (Bacteria)

ये वनस्पति वर्ग के अतिसूक्ष्म जीव हैं जो एककोशिय (unicellular) होते हैं । जीवाणु अनेक रूप तथा आकार के होते हैं । साधारणतया ये गोल, छड़ की तरह लम्बे (rod shaped) या कुण्डलीदार (spiral) होते हैं । जीवाणु में पर्णहरित (chlorophyll) नहीं होते हैं । ये बहुत तेजी से संवर्धन (multiply) करते हैं । इनकी संख्या एक ग्राम मृदा में 3 लाख से 9.5 करोड़ तक पाई जाती है ।

जीवाणुओं का वर्गीकरण मुख्यतया निम्न दो वर्गों में किया जा सकता है –

1. **स्वपोषित जीवाणु (Autotrophic Bacteria)** ये आत्मनिर्भर जीवाणु हैं। ये अकार्बनिक यौगिकों जैसे अमोनिया नाइट्राइट, गन्धक, लोहा, मैंगनीज, हाइड्रोजन, कार्बन मोनोक्साइड तथा मिथेन के ऑक्सीकरण (oxidation) से ऊर्जा प्राप्त करते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड से कार्बन प्राप्त करते हैं ।
2. **परपोषित जीवाणु (Heterotrophic Bacteria)** :ये जीवाणु अपनी ऊर्जा कार्बन का सम्मिश्रण (complex) तथा कार्बनिक पदार्थों (organic matter) से प्राप्त करते हैं ।

(A) नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवाणु (Nitrogen-fixing Bacteria) ये जीवाणु अमोनिया को नाइट्रेट के रूप में बदलते हैं । ये मृदा में नाइट्रोजन का यौगिकीकरण निम्नलिखित दो प्रकार के जीवाणुओं द्वारा करते हैं –

(i) सहजीवी जीवाणु (Symbiotic Bacteria) ये दलहन पौधों (legumes) की जड़ों में ग्रन्थियाँ (nodules) बनाकर रहते हैं और दलहन पौधों के कोशा रस (cell sap) से ऊर्जा प्राप्त करते हैं । ये वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण (fixation) करते हैं । राइजोवियम (rhizobium) इस वर्ग के जीवाणु हैं।

(ii) असहजीवी जीवाणु (Non-symbiotic Bacteria) :इस वर्ग के जीवाणु स्वतन्त्र रूप से जीवन निर्वाह करते हैं तथा वायुमण्डल के नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते है। ये दो प्रकार के होते हैं ।

(a) वायुजीवी जीवाणु (Aerobic Bacteria) :ये वायु की उपस्थिति में सक्रिय रहते हैं । इस वर्ग में एजोटोवेक्टर (Azotobacter) जीवाणु आते हैं ।

(b) अवायुजीवी जीवाणु (Anaerobic Bacteria) :ये वायु की अनुपस्थिति में सक्रिय रहते हैं । क्लोस्ट्रीडीयम **(clostridium)** इस वर्ग के जीवाणु हैं ।

(B) नाइट्रोजन–विहीन–यौगिकीकारी जीवाणु (Non-nitrogen-fixing Bacteria) ये दो प्रकार के होते हैं :

(i) वायुजीवी जीवाणु (Aerobic Bacteria) :ये अमोनीकारी जीवाणु (ammonifying bacteria) या अमोनिफर (ammonifiers) कहलाते हैं ।

(ii) अवायुजीवी जीवाणु (Anaerobic Bacteria) :ये विनाइट्रकारी जीवाणु (denitrifying bacteria) या विनाइट्रकर (denitrifiers) कहलाते हैं । उदाहरण, Pseudomonas bacteria ।

शैवाल (Algae)

शैवाल में पर्णहरित पाये जाते हैं जिस कारण ये प्रकाश–संश्लेषण के द्वारा अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं । ये भूमि के पृष्ठीय परतों में रहते हैं । इसका वितरण आर्द्रता तथा प्रकाश की उपस्थिति में होता है । शैवाल को निम्नलिखित तीन वर्गों में बॉटा जा सकता है –

(i) हरा शैवाल (Green Alage)

(ii) नीली–हरी शैवाल (Blue-green Algae)

(iii) डायटम (Diatom Alage)

नीली–हरी शैवाल सबसे महत्वपूर्ण है । प्रति ग्राम मृदा में 1,00,000 नीली–हरी शैवाल पाए जाते हैं। ये पौधों की वृद्धि को निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करते हैं –

(i) ये वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का मृदा में यौगिकीकरण करते हैं ।

(ii) ये मृदा में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि करते हैं ।

(iii) ये मृदा–पृष्ठ पर मृदा कणों को बॉधने में सहायता करते हैं ।

(iv) ये दलहनी मृदा (swamp soil) में वायुसंचार बढ़ाते हैं ।

एल्गी कल्चर (algae culture) तथा अजोला (azolla) को जैविक खाद (bio-fertilizers) के रूप में व्यवहार किया जा सकता है ।

2.3.3 जन्तु वर्ग के मृदा–जीव (Soil Organism of Animal Nature) :

प्रोटोजोआ (Protozoa) – प्राणियों का यह सबसे सरल रूप है । ये आकार में एककोशीय तथा सूक्ष्मदर्शी होते हैं।

नेमाटोड (Nematode) – नेमाटोड को कृमि भी कहा जाता है । यह मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न कृमियों में सबसे प्रमुख है। नेमाटोड कार्बनिक पदार्थ तथा मृदा को अच्छी तरह मिश्रित कर देता है। नेमाटोड पौधों में रोग भी उत्पन्न करता है।

केंचुआ (Earthworm) – मृदा के बड़े प्राणियों में केंचुए का मृदा पर अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इनकी संख्या बहुत अधिक होती है । एक एकड़ भूमि में इनकी संख्या दस लाख तक हो सकती है।

मृदा सूक्ष्मजीवों के लाभप्रद कार्य (Beneficial functions of soil micro organism) :

मृदा सूक्ष्मजीव अनेक लाभप्रद कार्य करते हैं, जिन्हें निम्नलिखित क्रम में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. कार्बनिक पदार्थ में परिवर्तन तथा विघटन (Change & decomposition in organic matter)
2. वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (Fixation of atmospheric nitrogen)
3. मृदा का निर्माण एवं विकास (Formation and development of soil)

1. कार्बनिक पदार्थ में परिवर्तन तथा विघटन (Change & decomposition in organic matter) :मृदा में कार्बनिक पदार्थ का परिवर्तन तथा विघटन अनेक रूपों में होता है जिसका वर्णन नीचे किया गया है –

A) खनिजीकरण (Mineralization) सूक्ष्म जीवों का एक प्रमुख कार्य मृदा के कार्बनिक पदार्थ का खनिजीकरण करना है । खनिजीकरण का अर्थ पादप तथा प्राणी मूल के कार्बनिक पदार्थ को सरल अकार्बनिक घटकों में भंग करना है । विभिन्न मृदा जीवों में जीवाणुओं (bacteria), कवकों (fungi) तथा ऐक्टिनोमाइसिटीज की सक्रियता अधिक महत्वपूर्ण है । जब कार्बनिक पदार्थ मृदा जीवों द्वारा सरल यौगिकों में रूपान्तरित किए जाते हैं, उस समय जो भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तन होते हैं, उन्हे **अपघटन (decomposition) की क्रियाएँ कहते हैं ।**

अमोनियम (NH_4^+) तथा नाइट्रेट (NO_3^-) आयन्स नाइट्रोजन के प्रमुख अकार्बनिक रूप (inorganic form) हैं जिनका उपयोग पौधे तथा सूक्ष्म जीवाणु पोषक के रूप में करते हैं । इसके विपरीत नाइट्रोजन कार्बनिक पदार्थ के अपघटन से अधिक गतिशील अमोनियम तथा नाइट्रेट लवणों में परिवर्तित होने का प्रक्रम अकार्बनिक पदार्थों का "खनिजीकरण" (mineralization) कहलाता है।

a) अमीनीकरण (Aminization) मृदा सूक्ष्मजीवों (जीवाणु, कवक, एकटीनोमाइसिटीज इत्यादि) द्वारा नाइट्रोजनीय जटिल कार्बनिक यौगिकों पर एनजाइमिक पाचन क्रिया होती है। जिसके फलस्वरूप जटिल अमीनों अम्ल बनते हैं जो अमीनीकरण कहलाता है।

b) अमोनीकरण (Ammonification) मृदा जीवों द्वारा एमीनो यौगिक का अमोनिया तथा अमोनियम लवणों में रूपान्तरण को "अमोनीकरण" कहते हैं । यह पौधों के पोषण के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि कुछ पौधे अमोनियम आयन्स का सीधे उपयोग करते हैं । अमोनीकरण की दर (rate) मृदा की दशाओं, कार्बनिक पदार्थ के स्वरूप तथा सूक्ष्म जीवों के प्रकार एवं संख्या पर निर्भर होती है ।

c) नाइट्रीकरण (Nitrification) अमोनिकल–नाइट्रोजन का नाइट्रेट–नाइट्रोजन में रूपान्तरण को नाइट्रीकरण कहते हैं । नाइट्रेट आयनों (ions) का पौधों द्वारा सीधा उपयोग होता है इसलिए यह प्रक्रिया काफी महत्वपूर्ण है । नाइट्रीकरण की क्रिया हवा की उपस्थिति (aerobic condition) में स्वपोषित जीवाणु (autotrophic bacteria) के द्वारा सम्पन्न होता है ।

d) डिनाइट्रीकरण (Denitrification) डिनाइट्रीकरण एक रासायनिक अभिक्रिया है, जिसमें सूक्ष्म जीवाणु (bacteria) मृदा में उपस्थित नाइट्रेट लवण का नाइट्राइटस, अमोनिया अथवा स्वतंत्र गैसीय नाइट्रोजन में अपघटित करते हैं । यह नाइट्रीकारण की उलटी प्रक्रिया है । विनाइट्रीकरण की प्रक्रिया आवश्यक रूप से ऑक्सीजन की अनुपास्थिति में घटित होती है । ऐसी बैक्टीरिया विनाइट्रीकर (denetrifiers) कहलाती है ।

(i) फॉस्फोरस का रूपान्तरण (Phosphorus tranformation) मृदा में उपस्थित कार्बनिक फॉस्फोरस को सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा विलेय (soluble) अकार्बनिक यौगिकों में परिणत कर दिया जाता है। ये विलेय यौगिक उपयुक्त मृदा पी०एच० (pH 7.5) उपलब्ध फॉस्फोरस आयन्स में परिवर्तित हो जाता है, जो सुगमतापूर्वक प्राप्य है । उदाहरणार्थ, एक संयोजी फॉस्फेट आयन ($H_2PO_4^-$) पौधे को अधिकतम मात्रा में सुलभ होता है । परन्तु जैसे ही घोल की क्षारीयता बढ़ती है तो पहले द्वि–संयोजी फॉस्फेट आयन (HPO_4^{--}) और त्रि–संयोजी फॉस्फेट आयन (PO_4^{---}) की सान्द्रता बढ़ती जाती है, जो पौधों को कम मात्रा में सुलभ या दुर्लभ होते हैं ।

(ii) सूक्ष्म पोषक तत्वों का रूपान्तरण (Transformation of micro nutrients) सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा सूख्म पोषक तत्वों जैसे जस्ता (zinc), ताँबा (copper), बोरॉन (boron) इत्यादि पर भी क्रिया होती है । जिस कारण सूक्ष्म पोषक तत्वों में आवश्यक रूपान्तरण होता है ।

2. **वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (Fixation of atmospheric nitrogen)** :वायुमण्डल में नाइट्रोजन मुख्यतया निष्क्रिय रूप में उपस्थित रहती है । इस मुक्त तथा प्रचुर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का लाभप्रद उपयोग करने के लिए इसे यौगिकीकरण की प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है । यह प्रक्रिया जीवाणुओं के दो वर्गों सहजीवी तथा असहजीवी के द्वारा पूरी होती है ।

1. असहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण (Asymbiotic nitrogen fixation) एजोटोबैक्टर तथा क्लोस्ट्रीडियम दो प्रमुख असहजीवी जीवाणु हैं ।

एजोटोबैक्टर मृदाओं में व्यापक रूप से पाये जाते हैं । इस जीवाणु के लिए 6.0 से ऊपर pH तथा अच्छा वायुसंचार आवश्यक है।

क्लोस्ट्रीडियम एक अवायुजीवी (anaerobic) जीवाणु है जो अधिक अम्लता सहन कर सकता है। इन जीवाणु की क्रिया के लिए मृदाओं को पूर्णतया जलाक्रान्त (water logged) होना आवश्यक नहीं होता है।

असहजीवी जीवाणु वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को नाइट्राइट तथा नाइट्रेट में बदल कर चूना–पदार्थ के साथ मिलकर कैल्सियम नाइट्रेट बनाता है, जो पौधों को प्राप्त होता है ।

एजोटोबैक्टर की कार्यक्षमता (efficiency) क्लोस्ट्रीडियम से अधिक होती है, क्योंकि वायुजीवी अवस्था (aerobic condition) में अधिक ऊर्जा स्वतन्त्र होती है तथा अवायुजीवी अवस्था (anaerobic condition) में कम ऊर्जा निकलती है ।

2. सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण (Symbiotic nitrogen fixation) सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणुओं में राइजोबियम की जातियाँ प्रमुख है । फलीदार पौधों (leguminous crops) जैसे – सनई, ढैंचा, मटर, चना इत्यादि की जड़ों में प्रवेश मूल–रोमों (root-haris) के द्वारा होती है और ये गुच्छों (cluster) के रूप में रहते हैं ।

जीवाणु (bacteria) अपनी नाइट्रोजन की आवश्यकता सीधे रूप में वायुमण्डल से पूरा करते हैं, परन्तु ये अपनी आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं । अतः नाइट्रोजन की अधिक मात्रा को आक्सीजन के साथ बाँधकर नाइट्रेटस में परिवर्तित करके पौधों की जड़ों में प्रवेश कराते हैं और कुछ नाइट्रेटस मिट्टी में चले जाते हैं । ग्रन्थियों में नाइट्रोजन अनुबन्धन करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है जो उन्हे पौधों द्वारा प्राप्त होता है । असहजीवी नाइट्रोजन–यौगिकीकरण की अपेक्षा सहजीवी नाइट्रोजन–यौगिकीकरण में अधिक नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (fixation) होता है ।

3. **मृदा का निर्माण एवं विकास (Formation and development of soil)** :मृदा के निर्माण एवं विकास में सूक्ष्म जीवों का निम्नलिखित योगदान होता है ।

(i) चट्टानों एवं खनिजों का अपघटन (Decomposition of rocks and minerals) सूक्ष्म जीव चट्टानों का अपघटन करता है और मृदा अपक्षय (Soil weathering) को बढ़ा देता है ।

(ii) कार्बनिक पदार्थ का अपघटन (Decomposition of organic matter) मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा तथा उसका स्वरूप और अपघटन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सूक्ष्मजीव बहुत हद तक कार्बनिक पदार्थ के अपघटन को नियंत्रित करते हैं ।

(iii) मृदा संरचना (Soil structure) सूक्ष्मजीव मृदा संरचना के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । ये मृदा में दानेदार संरचना (granular structure) की वृद्धि करते हैं ।

मृदा अभिक्रिया या मृदा पी०एच० (Soil reaction or soil pH) :

मृदा अभिक्रिया प्रायः मृदा निलम्बन (suspension) अथवा विलयन की अम्लता, उदासीनता तथा क्षारीयता की डिग्री अथवा तीव्रता (intensity) प्रकट करती है जो पी०एच० (pH) मान में व्यक्त की जाती है । मृदा अभिक्रियायें एक माध्यम के रूप में वांछनीय सूक्ष्म–जीवाणुओं तथा पौधों की वृद्धि के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है । यह मृदा के अनेक भौतिक तथा रासायनिक गुणों को प्रभावित करती है । मृदा की उपयुक्तता इस बात पर निर्भर कती है कि मृदा अम्लीय है, या उदासीन है, या क्षारीय है । यदि मृदा कोलाइडी संकीर्ण पर H^+ आयन्स अधिक मात्रा में अधिशोषित हो तो मृदा अम्लीय होगी, जबकि OH^- आयन्स समान संख्या में अधिशोषित हो तो मृदा उदासीन होगी । जलीय विलयन में H^+ तथा OH^- आयन्स विद्यमान रहते हैं । जबकि एक प्रकार के आयन्स का सान्द्रण दूसरी प्रकार के आयन्स से बढ़ जाता है तो उसी प्रकार से विलयन अम्लीय अथवा क्षारीय बन जाता है । मृदा कोलाइडी संकीर्ण पर अधिशोषित H^+ की संतृप्ति के आधार पर मृदा तीन भागों में विभाजित की जा सकती है ।

1. अम्लीय मृदा (Acidic soils)
2. उदासीन मृदा (Neutral soils)
3. क्षारीय मृदा (Alkali soils)

मृदा की पी०एच० मान के रूप में वर्णित अम्लीयता तथा क्षारीयता मृदा अभिक्रिया (Soil reaction) कहलाता है । इसका आधार मृदा अथवा विलयन में उपस्थिति $[H^+]$ अथवा $[OH^-]$ आयनों का सक्रिय सान्द्रण होता है जिनका स्त्रोत जल के अणु होते हैं जो वियोजन के पश्चात H^+ एवं OH^- आयन उत्पन्न करते हैं ।

हाइड्रोजन–आयन सान्द्रण तथा पी० एच० (Hydrogen-ion concentration & pH value)

यह अच्छी तरह मालूम है कि शुद्ध जल विद्युत का कुचालक होता है और इसका कम वियोजन होता है । पूर्णतः उदासीन होने के कारण शुद्ध जल में H^+ एवं OH^- आयन की संख्या कम होती है। H^+ एवं OH^- आयन की तुलना में अवियोजित जल (H_2O) की सान्द्रता इतनी अधिक होती है कि सभी प्रयोगात्मक कार्य के लिए (H_2O) का मान स्थिर या अपरिवर्ती होता है । शुद्ध जल रासायनिक रूप से स्वयं हमेशा "उदासीन" (neutral) है ।

जल का वियोजन निम्न प्रकार होता है ।

$$\underset{\text{जल अणु}}{H_2O} \rightleftharpoons \underset{\text{हाइड्रोजन आयन}}{H^+} + \underset{\text{हाइड्रोक्सील आयन}}{OH^-}$$

पी० एच० की परिभाषा (Defination of pH) :

पी० एच० हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (या H^+ सक्रियता) का ऋणात्मक लघुगुणक होता है।

"pH may be defined as the negative log of hydrogen ion activity" या

किसी विलयन का पी० एच० उसके एक लीटर में उपस्थित ग्राम हाइड्रोजन आयन सान्द्रता के व्युत्क्रम का लघुगुणक होता है ।

"pH is defined as the logarithim of the reciprocal (or negative logarithium) of hydrogen-ion activity in gram per litre"

$$pH = \log \frac{1}{[H^+]}$$

या $[H^+] = 10^{-pH}$

समीकरण के दोनो तरफ लघु (log) लेने पर

$$\log_{10}[H^+] = \log 10^{-10 pH}$$

$$= -pH \log 10$$

$$= -pH$$

$$pH = -\log 10 [H^+]$$

$$= \log 10\, 1/[H^+]$$

K

pH को साधारणतया लघु अक्षर 'p' तथा बड़े अक्षर 'H' से प्रगट किया जाता है । शब्द pH में p तथा H का अर्थ क्रमशः ऋण घातांक (negative exponent) तथा हाइड्रोजन आयन सान्द्रण व्यक्त करती है ।

पी० एच० एक गणना (notation) है, जो तन्त्रों की सक्रिय अम्लता या क्षारीयता की मात्रा (degree) अथवा तीव्रता (intensity) को संकेतों (symbols) द्वारा प्रकट करता है । pH का अंकात्मक मान जितना कम रहेगा, H^+ आयन सान्द्रण उतना ही अधिक होगा । pH के अक्षर 'p' हाइड्रोजन का घातांक (exponent) तथा ग्राम हाइड्रोजन आयन सान्द्रण की क्रियाशीलता (activity) प्रति लीटर विलयन प्रकट करता है ।

पी० एच० मापक्रम (pH scale)

पी० एच० मापक्रम अंकों की सीरीज है जो किसी विलयन की अम्लीयता, उदासीनता तथा क्षारीयता मापती है । ये संख्यायें साधरणतया 0 से 14 तक होती है और नम्बरों की इस संख्या को पी० एच० मापक्रम (pH scale) कहा जाता है । ताजा डिस्टिल्ड जल जो 25°C पर पूर्णतः उदासीन होता है और इसका पी० एच० 7 होता है । जैसे–जैसे पी० एच० 7 से 0 के ओर घटता है तो विलयन की अम्लीयता बढ़ती है । जब पी० एच० 7 से बढ़कर 14 हो जाता है, तो अत्यधिक क्षारीय विलयन बन जाता है । मृदा घोल में अम्लीयता हाइड्रोजन आयन H^+ और क्षारीयता हाइड्रोक्सिल आयन (OH^-) के कारण होती है । जब एक की मात्रा दूसरे से अधिक होती है घोल अम्लीय या क्षारीय हो जाता है ।

तालिका–समु (पी०एच०) पैमाना (pH Scale)

pH 5.5	6.0	6.5	7.0	7.5	8.0	8.5	pH
Strong Acid	Medium Acid	Slightly Acid	Neutral	Very slightly Alkaline	Slightly Alkaline	Medium Alkaline	Strong alkaline

← ACIDITY NEUTRALITY ALKALINITY →

जब मृदा घोल में दोनों की मात्रायें बराबर होती है मृदा उदासीन होती है । साधारण मृदाओं का पी०एच० मान 6.0–8.5 तक होता है। ये मृदायें सभी दशाओं में साधारण फसलों के लिए उपयुक्त तथा अधिक संतोषजनक होती हैं, क्योंकि ऐसी मृदाओं में रासायनिक एवं जैविक अभिक्रियायें संतुलित रहती है और फसलों के लिए पोषकों की उपलब्धि भी पर्याप्त मात्रा में होती रहती है।

मृदा पी०एच० का पौष्टिक महत्त्व (Nutritional importance of soil pH)

पी० एच० मृदा का महत्त्वपूर्ण गुण है, पौधों की समुचित वृद्धि, पोषक तत्वों की प्राप्यता, जीवाणुओं की क्रियाशीलता तथा मृदा के भौतिक गुण मृदा की पी० एच० के अनुसार प्रभावित होते हैं । यदि मिट्टी अत्यन्त अम्लीय अथवा क्षारीय है तो अनेक साधारण फसलें उसमें उगने एवं पनपने नहीं पाती हैं । पौधों की प्रत्येक जाति की साधारण वृद्धि के लिए अनुकूलतम पी० एच० परिसर होती है । मृदा के अनेक भौतिक तथा रासायनिक अभिक्रियायें पी० एच० द्वारा प्रभावित होती है । किसी मृदा के अनुपजाऊ अथवा उपजाऊ होना मृदा पी० एच० पर निर्भर करता है । पौधों के पोषक तत्वों की विलेयता पर पी० एच० के विभिन्नता (variation) का बड़ा प्रभाव पड़ता है । पोषकों को विलयन के रूप में लाकर उन्हें पौधों द्वारा सरलता से अवशोषित कराने में पी० एच० सहायता करती है।

2.4 मृदा–जल (Soil Water)

2.4.1 परिचय (Introduction)

हम जानते हैं कि जल प्राणियों का जीवन है । समस्त भू–पृष्ठ का लगभग 71 प्रतिशत भाग जल से भरा (Covered) है। पृथ्वी के तीन–चौथाई भाग पर जल का आवरण देखकर ऐसी भ्रम हो सकती है कि स्थल–मण्डल (Lithosphere) की अपेक्षा जल मण्डल (Hydrosphere) का क्षेत्रफल विस्तृत है । परन्तु प्राणियों (Animals) तथा वनस्पतियों की वृद्धि तथा विकास के लिए जल–मण्डल तथा स्थलमण्डल के मध्य यह अनुपात अत्यन्त आवश्यक है । विभिन्न प्राणियों और वनस्पतियों के शरीर में पानी परिवर्तनशील

मात्रा में प्रचुरता से विद्यमान रहता है । मानव शरीर में आयु के अनुसार 60–80 प्रतिशत, पशुओं में 40–50 प्रतिशत, पक्षियों में 75 प्रतिशत, जल में रहने वाले या जल में पैदा होने वाले जन्तुओं (Acquatic animals) में 80 प्रतिशत, वनस्पतियों में 60–98 प्रतिशत तक जल का अंश विद्यमान रहता है । इस अनुपात में थोड़ा सा भी परिवर्तन होने पर मनुष्य पेड़–पौधे तथा अन्य जीवधारियों पर प्रभाव पड़ता है । दूसरे जलवायु की विषमता को दूर करने के लिए भी जल का इतना अनुपात आवश्यक है । इससे सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जीवन के विकास के लिए जल कितने महत्व की वस्तु है ।

2.4.2 मृदा जल का महत्त्व (Importance of Soil Water)

मृदा जल का महत्त्व अनेक रूपों में है। पौधों की वृद्धि तथा उपज पर जल का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मृदा–जल मृदा के अन्तर्गत होने वाली भौतिक, रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है।

मृदा क्रियाओं के लिए जल का महत्त्व

चट्टानों के विघटन से लेकर मृदा के विकास एवं उपयोग तक की समस्त अभिक्रियाएँ जल पर आधारित है। जल के अभाव में न तो चट्टानों द्वारा मृदा का निर्माण सम्भव है और न मृदा का उपयोग।

मृदा के [illegible] निम्नलिखित प्रक्रमों के लिए आवश्यक है –

i) चट्टानों के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक अपक्षय (Weathering)
ii) मृदा के मूल पदार्थो का निर्माण
iii) मृदा के मूल पदार्थो का परिवहन
iv) मृदा संरचना में विकास एवं सुधार
v) मृदा का रंग
vi) मृदा का तापक्रम संधारण
vii) अम्लीय एवं क्षारीय मृदाओं का निर्माण एवं सुधार
viii) मृदा कार्बनिक पदार्थो का अपघटन एवं ह्यूमस का निर्माण
ix) मृदा जीवाणुओं का वितरण एवं सक्रियता
x) मृदा घोल का निर्माण एवं घनायन विनिमय (Cation Exchange)
xi) मृदा कोलाइड का निर्माण एवं कार्य

जल विज्ञान एवं जल चक्र (Hydrology and Hydrologic cycle)

प्रकृति में जल चक्र का अध्ययन "जल विज्ञान" (Hydrology) कहलाता है । इस प्रकार जल प्रकृति के मृदा पादप जीव–जन्तु एवं वायुमण्डल में निरन्तर ठोस, द्रव एवं गैस रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रवाहित होता रहता है ।

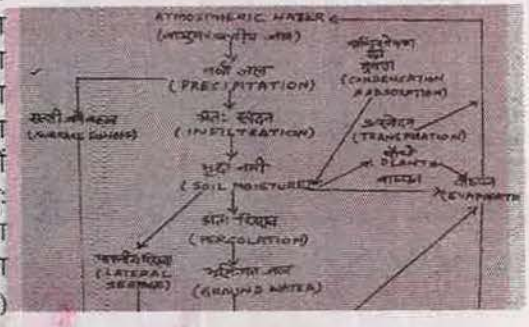

जल एक क्रमिक चक्र में लगातार चलता है । समुद्री जल के वाष्पीकरण (Evaporation) से बादलों से बादलों का बनना, बादलों से वर्षण (Precipitation) का होना, वर्षण जल का अन्तः स्पंदन (Infiltration) द्वारा मृदा नमी में परिवर्तन, मृदा नमी से अन्तः स्रवण (Percolation) द्वारा भूमिगत जल (under-ground water) में रूपान्तरण, वर्षण जल के कुछ अंश का सतही अपवाह (Surface runoff) के रूप में बहकर नदी–नालों (Streams), झरनों (Springs) में होता हुआ अन्त में समुद्री जल में पुनः लौटना प्रकृति के निश्चित भौतिक तथा रासायनिक नियमों की अनुक्रिया (Response), के अनुसार जल–गतियों (Water movements) के सर्वदा बार–बार होने वाले रूपान्तर जल वैज्ञानिक चक्र (Hydrological cycle) अथवा जल चक्र (Water cycle) कहलाते हैं ।

जल चक्र को निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ।

वास्तव में यह एक साधारण चक्र नहीं है, किन्तु अनेक चक्रों का एक संयुक्त तन्त्र (Combined system) है। जल–विज्ञान के अध्ययन से हमें वर्ष के अनेक भागों के दौरान फसल उत्पादन की दृष्टि से उपलब्ध जल की मात्रा, उसके फसलों एवं मृदाओं पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी का पता चल जाता है ।

मृदा जल का वर्गीकरण (Classification of soil water)

मृदा जल का वर्गीकरण अनेक दृष्टिकोण से किया जाता है जिसमें से कुछ प्रमुख प्रकार के वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार के हैं:–

(अ) मृदा जल का भौतिक वर्गीकरण

(ब) मृदा जल का जैविक वर्गीकरण

मृदा जल का भौतिक वर्गीकरण (Physical classification of soil water)

ब्रिग्स (Briggs) महोदय ने मृदा जल को भौतिक ढंग से निम्नलिखित तीन विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है –

(1) आर्द्रताग्राही जल (Hygroscopic water)

(2) केशिकीय जल (Capillary water)

(3) गुरूत्वाकर्षण जल (Gravitational water)

इसके अतिरिक्त मृदा जल के दो रूप और होते है जो निम्नलिखित है –

(1) क्रिस्टलन जल (Water of crystallization)

(2) मृदा जल वाष्प (Soil water evaporation)

1. आर्द्रताग्राही जल (Hygroscopic water)

यह जल मृदा कलिल कणों पर इस प्रकार दृढ़ता से धारित होता है कि इसे अलग करना बहुत कठिन है । यही कारण है कि इस जल को जैव–पौधों द्वारा आसानी से उपयोग नहीं किया जाता है ।

आर्द्रताग्राही जल का सिंचाई, जल–निकास तथा भू–कटाव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता । मृदा में इस जल की प्रतिशत मात्रा मुख्य रूप से निम्नलिखित दो कारकों द्वारा प्रभावित होती रहती है और इनके समानुपाती (Proportional) होती है:–

i) मृदा कणों की सूक्ष्मता (Fineness of Soil particles) मृदा कण जितने अधिक महीन आकार के होते हैं, मिट्टी में उतना ही अधिक आर्द्रताग्राही जल होगा ।

ii) वायुमंडलीय आर्द्रता की मात्रा (Degree of atmospheric humidity) यह जल मात्रा वायुमण्डल की आपेक्षिक आर्द्रता (Relative humidity) के साथ–साथ मृदा में बढ़ता है ।

2. केशकीय जल (Capillary water):

केशकीय जल वह जल होता है जो आर्द्रताग्राही जल एवं गुरूत्वाकर्षण जल दूसरे शब्दों में आर्द्रताग्राही गुणकें तथा क्षेत्र धारिता (Field Capacity) के मध्य उपस्थित जल की मात्रा को केशकीय जल कहते हैं । मृदा में यह जल 0.33 से 31 वायुमण्डलीय तनाव एवं 2.54–4.5 पी.एच. पर धारित होता है । द्रव अवस्था में उपलब्ध होने के कारण प्रायः सभी दिशाओं में गति कर सकता है। यह जल अधिक केशिका - रन्ध्रों (Capillary - Pores) तथा कम अकेशिका–रन्ध्रों (Non-capillary Pores) में आसंजन (adhesion) तथा पृष्ठ तनाव (Surface tension) के बलों द्वारा रूका रहता है । जिस मृदा में बड़े रन्ध्रों की अपेक्षा छोटे–रन्ध्र अधिक होते हैं उसमें केशिका–जल धारण क्षमता अधिक होती है क्योंकि केशिका–जल मृदा–कणों के चारों ओर पतली परत के रूप में तथा छोटे–रन्ध्रों के बीच उपस्थित रहता है। बलुई मृदा (Sandy Soil) की अपेक्षा दोमट मृदा (Loamy Soil) में केशिका जल धारण करने की क्षमता अधिक होती है। केशिका–जल में पौधों के समस्त पोषक तत्व एवं आयन घुले रहते हैं और पौधों के लिए अत्यन्त

लाभदायक होता है । यही जल मृदा जल (Soil Water) कहलाता है ।

3. गुरूत्वाकर्षण जल (Gravitational water)

यह मृदा जल का तीसरा वर्ग है । इसे स्वतन्त्र जल (Free water) भी कहा जाता है । यह जल भूमि की ऊपरी तहों से नीचे की ओर गुरूत्वीय बल (Gravitational force) द्वारा बहता है । भारी वर्षा के तुरन्त बाद सतही भूमि की समस्त सूक्ष्म एवं वृहत रन्ध्रों (Micro and macro pores) में जल पूर्ण रूप से भर जाता है और वृहत रन्ध्रों (Macro or non- capillary pores) में जल शिथिलता से रूका रहता है । मृदा में यह जल मात्रा जिसमें निचली संस्तरों की तरफ बहने की प्रवृति होती है गुरूत्वाकर्षण जल (Gravitational water) कहलाता है ।

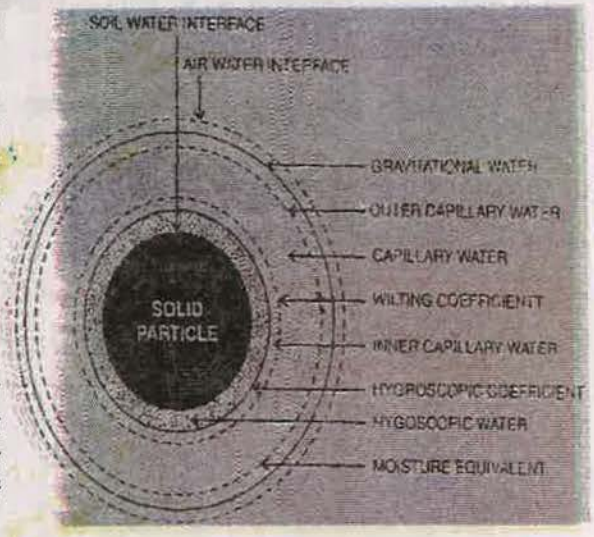

गुरूत्व जल मृदा की तत्काल आवश्यकता से अधिक जल (Superfluous water) होता है और इस जल का तनाव (tension) 0.33 वायुमण्डलीय तनाव से कम होता है चूँकि यह जल मृदा के बड़े–बड़े रन्ध्रावकाशों में रूका रहता है जिससे मृदा वायु बाहर निकल जाती है जिससे वायु का आवागमन अवरूद्ध हो जाता है और ऑक्सीजन के अभाव में जड़ें श्वसन क्रिया नहीं कर पाती हैं जिससे पौधे मरने लगते हैं ।

यह जल पादप पोषकों का प्रचुर मात्रा में हानि करता है, जिससे मृदा उर्वरता (Soil fertility) को बनाये रखने में कठिनाई पैदा हो जाती है । यह जल धान आदि फसलों के लिए लाभकारी होता है । यदि यह जल अधिक समय तक मृदा रन्ध्रों में भरा रहे तो अधिकांश कृषि फसलों की जड़े सड़–गलकर नष्ट हो जायेगी । अतः गुरूत्वीय जल की अधिकता होने पर उस भूमि में जल निकास (Drainage) का प्रबन्ध करना चाहिए।

(ब) मृदा जल का जैविक वर्गीकरण (Biological Classification of Soil water)

सभी मृदा–नमी पौधे की तीव्र वृद्धि (rapid growith) की आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से संन्तुष्ट करने के लिए उपलब्ध नहीं होती। पौधे को आवश्यकतानुसार जल की उपलब्धता को आधार मानकर इसे निम्नलिखित भागों मे विभाजित किया जा सकता है ।

i) अप्राप्य जल (Unavailable water)

ii) इच्छापूर्वक प्राप्य जल (Desirably available water)

iii) आवश्यकता से अधिक जल (Superfluous water)

1. अप्राप्य जल (Unavailable water):

स्थायी म्लानी–बिन्दु (Permanent wilting point) अथवा म्लानी गुणांक (Wilting coefficient) से नीचे समस्त मृदा नमी जहाँ तक वानस्पतिक वृद्धि (Vegetative growth) सम्बन्धित है, पौधे की पहुँच के बाहर है, अर्थात् जल पेड़–पौधों की सामान्य वृद्धि हेतु हमेशा उपलब्ध नहीं हो पाता है । इस कारण से यह "अप्राप्य जल" कहा जाता है ।

मृदा में उपलब्ध सूक्ष्म जीवाणु एवं कवक इस जल का उपयोग करने में सक्षम हैं । शुष्क प्रदेशों में उगने वाले कुछ पौधे की जड़ें जो मृदा के कलिल संकीर्ण के अन्दर प्रवेश कर जाती है, इस जल का उपयोग कर लेती है ।

2. इच्छापूर्वक प्राप्य जल (Desirably available water):

इसके अन्तर्गत वह जल आता है जो स्थायी म्लानि–विन्दु (Permanant wilting Point) तथा क्षेत्र–क्षमता (Field capacity) के बीच के

मृदा–जल के परिसर (Range) को पौधों के लिए "प्राप्य जल" माना जाता है । स्थायी म्लानि–बिन्दु मृदा के प्रकार पर निर्भर करता है । इस जल के अन्तर्गत केशिका जल आता है । यह जल मृदा से 0.33 से 15 बार दाव या 2.54 से 4.2 पी॰एफ॰ पर धारित है । कृषि के दृष्टिकोण से इस जल का महत्वपूर्ण स्थान है ।

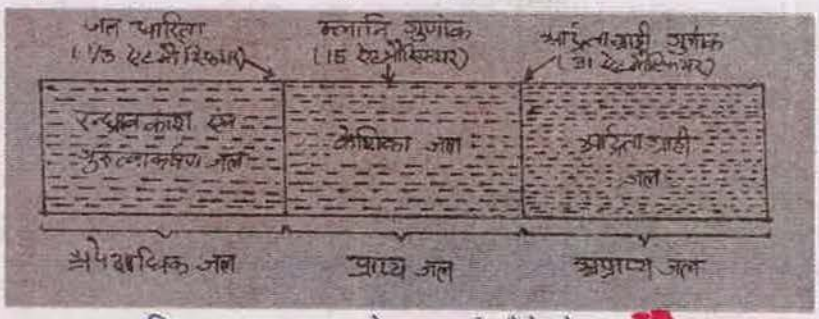

चित्रः – मृदा जल के रूप एवं पौधे से सम्बन्ध

3. आवश्यकता से अधिक जल (Superfluous water) :

मृदा के क्षेत्र क्षमता (Field capacity) के ऊपर पाये जाने वाले जल को आवश्यकता से अधिक कहते हैं। यह जल पौधों के लिए अनावश्यक हेाता है क्योंकि इसका उपयोग पौधे नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार के जल का अधिक जमाव होने से मृदा के गुणों एवं पौधों की वृद्धि एवं विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसकी अधिकता में मृदा वातन अत्यन्त कम हो जाता है जिससे जड़ों एवं सूक्ष्म जीवाणुओं के लिए आवश्यक ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है। फलस्वरूप सभी जैव एवं रासायनिक प्रतिक्रियाएँ; जैसे– नाईट्रीकरण, अमोनीकरण एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण इत्यादि। इस जल में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व घुलकर जल निकास द्वारा बह जाता है।

2.5 मिट्टी की उर्वरा शक्ति तथा उत्पादकता एवं उनके सूचक (Soil fertility productivity and their indicator)

उचित अनुपात एवं भरपूर मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति का आनुवांशिक (inherent) गुण मृदा में होता है जिसे मृदा उर्वरता (Soil fertility) कहा जाता है और एक निश्चित प्रबंधन के तहत मृदा में फसल उत्पन्न करने की क्षमता मृदा उत्पादकता (Soil productivity) कहलाती है, जिसे उत्पादन (Yield) में व्यक्त किया जाता हैं। सभी उत्पादक मृदा (Productive soil) निश्चित तौर पर उर्वर (Fertile) होता हैं जबकि सभी उर्वर मृदा उत्पादक हो ही, ऐसा जरूरी नहीं हैं।

मृदा उर्वरता (Soil fertility)

निर्दिष्ट पौधों की वृद्धि के लिये, जब अन्य कारक जैसे प्रकाश, ताप तथा मृदा की भौतिक दशायें उपयुक्त हो, मृदा की सभी आवश्यक पोषक तत्वों को प्राप्य रूप, उचित मात्रा तथा उचित सन्तुलन में प्रदान करने की क्षमता को मृदा उर्वरता कहते हैं या पौधों की वृद्धि के लिये मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक क्षमता के योग को मृदा उर्वरता कहते हैं। मृदा में यदि पौधों के लिये सभी आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर तथा सन्तुलित मात्रा में उपस्थित हों किन्तु जल निकास उचित न होने के कारण वायु एवं जल के उचित संचार में बाधा पैदा हो और लाभप्रद सूक्ष्म जीवों के लिये प्रतिकूल परिस्थिति हो तो मृदा की उर्वरता कम होगी। यह समझा जाता है कि मृदाओं में किसी भी प्रकार के वैषिक पदार्थ नहीं होने चाहिये। इस प्रकार लवणीय मृदा उपजाऊ हो सकती हैं, परन्तु उसमें उपस्थिति सोडियम लवणों को आधिक्य पौधों के लिये वैषिक होता है तथा सोडियम, कैल्शियम, पोटाशियम और अन्य पोषक तत्वों के बीच सन्तुलन को भी असन्तुलित कर देता हैं। साधारणतः उपजाऊ मृदायें उत्पादक (productive) होनी चाहिए, परन्तु यह तथ्य सभी दशाओं में सत्य नहीं हैं।

मृदा उत्पादकता (Soil Productivity)

मृदा उत्पादकता मृदा की एक निर्दिष्ट प्रबंध के अन्तर्गत पौधों या फसल पैदा करने की क्षमता होती हैं। मृदा उत्पादकता की परिभाषा में प्रबंधन आवश्यक हैं, क्योंकि कोई भी मृदा सभी फसलों को समान सफलता के साथ पैदा नहीं कर सकती तथा एक ही भू–प्रबंध की प्रणाली का सभी मृदाओं पर एक ही प्रभाव नहीं होता।

मृदा उत्पादकता का अभिप्राय उसकी प्रति इकाई आर्थिक पैदावार लेने की क्षमता से है, तथा उत्पादकता का माप आर्थिक उपज है। उत्पादन कई वृद्धि कारकों के पारस्परिक संबंधों के ऊपर निर्भर होता है, जिनमें से प्रत्येक का पौधे की वृद्धि के लिये उपयुक्त

दशा में होना आवश्यक है। अधिकतम फसल उत्पादन के लिये इन कारकों को पूर्णरूप से नियंत्रण में रखना आवश्यक हैं। इनमें से कई कारकों जैसे जलवायु, मृदा का भौतिक संगठन तथा कीट–व्याधि आक्रमण, जलाक्रांति को मनुष्य आंशिक या पूर्णरूप से नियंत्रित कर सकता है जबकि पौधों की किस्म, खरपतवारों, बोने का समय तथा उर्वरता प्रबंध आदि को पूर्णरूप से नियंत्रित किया जा सकता हैं। वृद्धि कारकों का पारस्परिक संबंध एक सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता हैं। इस सूत्र के अनुसार उत्पाद या उपज को निम्न समीकरण द्वारा परिभाषित कर सकते है:

$$\text{Productivity} = \text{Economic yield} = f(s, Cl, v, h, t)$$

जहाँ, s = soil, Cl = climate

v = crop, h = management, t = time

इन सभी कारकों में फसल उत्पादन के लिये मुख्य कारक मृदा हैं। मृदा का कणाकार, संरचना, जल धारण क्षमता, वायु संचार, हानिकारक पदार्थों की उपस्थिति या अनुपस्थिति तथा उर्वरता अधिक उत्पादन के लिये आवश्यक हैं।

मृदा उत्पादकता एवं उर्वरता में अन्तर

उत्पादकता	उर्वरता
उत्पादकता पौधा या फसल पैदा करने की क्षमता होती हैं।	मृदा उर्वरता पौधों के सभी आवश्यक पोषक तत्वों को प्राप्य रूप, उचित मात्रा तथा उचित सन्तुलन में प्रदान करने की क्षमता होती हैं।
उपज का मूल्य बढ़ने से किसी मिट्टी की उर्वरता अपेक्षाकृत कम होने पर भी उसकी उत्पादकता अधिक हो सकती हैं।	उपज का मूल्य बढ़ने पर मृदा की उर्वरता नहीं बढ़ती।
मृदा की उर्वरता, परिवहन के व्यय, उपज की माँग तथा फसल पैदा करने में व्यय मृदा उत्पादकता को निर्धारित करते हैं।	मृदा की भौतिक दशा, रासायनिक स्थिति तथा मृदा में पौधों के खाद्य तत्वों की मात्रा व उनका सन्तुलन मृदा उर्वरता को निर्धारित करते हैं।
मृदा उत्पादकता एक व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत भौतिक क्रियायें व आर्थिक नियम काम करते हैं, उपज का मूल्य मुख्य रूप से मृदा उत्पादकता निर्धारित करती हैं।	उर्वरता उत्पादकता का एक मुख्य अंग हैं। उर्वरता अच्छी जुताई, खाद, सिंचाई तथा जल निकास आदि से बढ़ाई जा सकती है।

मिट्टी की स्वास्थ्य के सूचक

अन्य जीवों की भाँति मिट्टी भी एक जीवन्त पदार्थ है। विभिन्न मिट्टियों की विशिष्ट भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुण होती है और इन विशिष्ट गुणों से उर्वरता एवं उत्पादकता प्रभावित होती है।

(क) मिट्टी के भौतिक गुण

1. **मिट्टी की संरचना :** मिट्टी की संरचना मुख्य गुण है। दानेदार मिट्टी हवादार होता है। पौधे की जड़ों का बढ़ाव जरूरत के अनुसार होता है। जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है तथा जैविक या रासायनिक खादों का पौधों द्वारा अवशोषण अधिक से अधिक होता है। ऐसी बनावट के कारण जल भण्डारण क्षमता अधिक होती है जिससे पौधों की जीवन चक्र पूरा करने तक जल की आपूर्ति होती रहती है। दानेदार संरचना ही आदर्श माना गया है जिससे अधिक से अधिक फसलोत्पादन की प्राप्ति की जा सकती है।

2. **मिट्टी की रन्ध्रमय होना :** जो मिट्टी अधिक रन्ध्रमय है उसमे ऑक्सीजन और कार्बन डाइआक्साईड गैस का संतुलन मिट्टी में बना रहता है। पौधों की जड़ों को इन गैसो की प्राप्ति होते रहता है तथा जलापूर्ति और पोषक तत्त्वों की आपूर्ति भी जरूरत के अनुसार होता रहता है। रन्ध्रमय मिट्टी हल्की होती है जिससे पौधे की जड़ो की बढ़ोतरी चहुमुखी होती है और पोषक तत्त्वों की अधिक से अधिक उपयोग होता रहता है।

3. **जल–धारण क्षमता :** जिन मिट्टियों की संरचना अच्छी होती है उसका जलधारण क्षमता अधिक होती है और पौधों को जरूरत के अनुसार जलापूर्ति होते रहता है फलस्परूप अधिक से अधिक उत्पादन होता है।

4. **मिट्टी का रंग :** अधिकांशतः जिन मिट्टियों का रंग काला या काला भूरा होता है वह खेती के लिए अच्छी मिट्टी होती है। ऐसी मिट्टी द्वारा ताप ग्रहण अधिक होता है तथा पौधों को उचित तापक्रम मिलता रहता है। जिस मिट्टी का रंग ऐसा नहीं रहकर दूसरे रंग का है इसका अर्थ है जैविक खादों की कमी है, वैसी मिट्टी में जैविक खाद का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।

5. **मिट्टी का तापक्रम :** खेती करने के लायक मिट्टियों का तापक्रम 20°–30° सेल्सियस तक होना चाहिए। तापक्रम को नियंत्रित रखने के लिए उचित मात्रा में जैविक खादों का प्रयोग किया जाता है। मिट्टी का मल्चींग या मिट्टी के सतह को तापक्रम बढ़ाने या घटाने के लिए खर–पतवार या प्लास्टिक पन्नी से ढक दिया जाना चाहिए।

(ख) मिट्टी के रासायनिक गुण

1. **पी०एच०** : अच्छी मिट्टी के लिए पी०एच० 6.5–7.5 तक आदर्श माना गया है। इससे ऊपर क्षारीय मिट्टी कहलाता है तथा नीचे अम्लीय मिट्टी कहलाता है। आदर्श पी०एच० से ऊपर या नीचे रहने पर अधिकांश पोषक तत्त्व कम मात्रा में या नहीं के बराबर पौधों को उपलब्ध हो पाता है। अतः आदर्श पी०एच० रखने हेतु मिट्टी में हरी खाद, कम्पोस्ट, प्रेस–मड या मिट्टी सुधारकों का व्यवहार करना चाहिए। इस पी०एच० पर मिट्टियों में जीवाणु की संख्या में भी वृद्धि होती है जो पौधों को अधिक से अधिक पोषक तत्त्वों की आपूर्ति करता है।

2. **पोषक तत्त्व :** अधिकांश पोषक तत्त्वों की प्राप्ति मिट्टियों के द्वारा ही होती है। जिस मिट्टी में सभी पोषक तत्त्वों की उपलब्धि रहती है उसे उर्वर मिट्टी माना जाता है और फसलोत्पादन के लिए उत्तम माना जाता है। एक भी तत्त्वों की कमी रहने पर पौधों का बढ़ाव ही नहीं बल्कि जीवन चक्र भी समाप्त हो जाता है । अतः अच्छी और उर्वर मिट्टियों में मुख्य तथा सूक्ष्म दोनो प्रकार के पोषक तत्त्वों की उपस्थिति जरूरी है।

3. **घुलनशील लवण :** मिट्टी में घुलनशील लवणों की मात्रा ज्यादा हो तो मिट्टी लवणीय या क्षारीय हो जाती है और पी०एच० 7.5 से ऊपर हो जाता है जो पोषक तत्त्वों की उपलब्धि तथा पौधों के बढाव में बाधक हो जाता है।

4. **कटायन तथा एनायन के आदान–प्रदान की क्षमता :** यह मिट्टी का एक महत्त्वपूर्ण गुण है। यह क्ले के कण, कार्बनिक पदार्थ एवं पौधों की जड़ों के बीच मिट्टी के घोल के माध्यम से होता है। जिस मिट्टी में जितना हीं अधिक कटायन तथा एनायन के आदान– प्रदान की क्षमता होगी वह मिट्टी उतना ही अधिक उपजाऊ होगी और फसल भी अच्छा होगा। साथ ही डाले गये उर्वरकों को फसल ज्यादा से ज्यादा प्राप्त कर सकेंगे।

5. **कार्बनिक पदार्थ :** मिट्टी के रासायनिक गुणों में कार्बनिक पदार्थ का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह 0.5 से 0.75 प्रतिशत तक मिट्टी में रहने पर सामान्य माना जाता है। कार्बनिक पदार्थ मिट्टी के लगभग सभी गुणों पर प्रभाव डालता है। कार्बनिक पदार्थ मिट्टी के संरचना को बढ़ावा देता है तथा दानेदार संरचना करता है जो फसलों के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। इस प्रकार के संरचना में हवा और पानी का आवागमन आसानी से होता है। मिट्टी में पानी धारण करने की क्षमता को बढ़ाता है जिससे पौधों को अधिक दिनों तक पानी मिलता है। पोषक तत्त्वों को धारण करने की क्षमता कार्बनिक पदार्थों में क्ले की अपेक्षा 2 से 30 गुणा अधिक होती है और अधिशोषण करने की क्षमता 30 से 90 प्रतिशत अधिक होती है।

फसलों को प्राप्त होने वाले पोषक तत्त्व कार्बनिक पदार्थों में आसानी से उपलब्ध रहते हैं। नेत्रजन, स्फुर एवं गंधक कार्बनिक रूप से इनमें मौजूद रहता है जो फसलों को आसानी से प्राप्त होता है। ये मिट्टी के कणों में उपस्थित पोषक तत्त्वों को भी निकालते हैं जो पौधों को आसानी से प्राप्त होता है। इतना हीं नही, यह उर्वरकों के हानिकारक प्रभाव को भी कम करता है। मिट्टी में जीवाणुओं की संख्या को बढ़ाता है।

6. **कार्बन–नेत्रजन का अनुपात :** यह भी मिट्टी का एक महत्त्वपूर्ण रासायनिक गुण है। जैविक खाद के डालने पर यह अनुपात बढ़ जाता है क्योंकि उस समय जीवाणु उपलब्ध नेत्रजन का उपयोग कर जैविक खाद को सड़ाते और तोड़ते हैं। लेकिन अन्त में 10 और 1 से लेकर 12 और 1 के अनुपात में स्थिर हो जाता है। यह गुण भी फसलों के विकास के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है।

(ग) जैविक गुण

अन्य गुणों की भाँति मिट्टी के जैविक गुण भी अति महत्त्वपूर्ण है। जो भी कार्बनिक या अकार्बनिक खादों का व्यवहार किया जाता है वह पौधों के लिए पोषक तत्त्वों की आपूर्ति मात्र 20 प्रतिशत ही कर पाता है। शेष 80 प्रतिशत पोषक तत्त्व पौधों को जीवाणुओं द्वारा ही आपूर्ति होता है। ये जीवाणु हैं बैक्टेरिया, एक्टिनोमाईसीटीज, अल्गी, फंगी इत्यादि। ये जीवाणु ही मिट्टी को जीवन्त रखता है और इसकी संख्या की बढ़ोतरी मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्त्व की आपूर्ति से की जा सकती है। इनका कार्य डाले गये

जैविक या अकार्बनिक खाद को पोषक तत्त्वों के रूप में रूपांतरित करना होता है जिसका उपयोग पौधों द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए यूरिया का रूपान्तरण नाइट्रेट या अमोनिया आयन में नाइट्रीफाईंग बैक्टेरिया के द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार फास्फोरस का रूपान्तरण मोनो या डायफास्फेट आयनों के रूप में फास्फोबैक्ट्रीन के द्वारा किया जाता है। अतः इन जीवाणुओं का कार्य मिट्टियों में अतिमहत्त्वपूर्ण है।

मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting Soil fertility) :–

(i) **मूल पदार्थ (Parent material)** : चट्टानों एवं जनक पदार्थों की विभिन्नता के अनुसार मृदा गुणों और उसकी उर्वरता में अन्तर पाया जाता हैं। अम्लीय आग्नेय चट्टानों और बालू पत्थर के अपक्षय से बलुई मृदाओं का निर्माण होता हैं। इन मृदाओं में केओलिनाइट क्ले खनिज पाया जाता हैं तथा इनमें क्षार की मात्रा कम होती हैं। इन मृदाओं की उर्वरता अपेक्षाकृत कम होती हैं। क्षारीय अवसादी चट्टानों के उपक्षय से भारी मृदाओं को निर्माण होता हैं तथा इनमें क्षारों की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। इन मृदाओं की उर्वरता भी अधिक होती है। कठोर और शुद्ध चूना पत्थर से निर्मित मृदायें बलुई तथा उथली होती है जबकि मृदु चूना पत्थर से भारी कणाकार वाली गहरी मृदायें निर्मित होती हैं।

(ii) **स्थलाकृति (Topography)** : ढालू पहाड़ी प्रदेशों की मृदा लीचिंग एवं मृदा अपरदन के कारण कम उपजाऊ होती है। निचले भागों की मृदाओं में ऊपरी स्थानों की मृदा के पोषक तत्त्व तथा कार्बनिक पदार्थ पानी के साथ बहकर एकत्रित हो जाते हैं, इसलिए ये मृदायें अधिक उपजाऊ होती हैं। इस प्रकार पहाड़ी क्षेत्रों एवं अन्य ऊँचें–नीचे क्षेत्रों की मृदा की उर्वरता मैदानी एवं समतल भूमि की अपेक्षा कम होती हैं।

(iii) **मृदा आयु (Soil age)** : प्रोढ़ मृदाओं में अधिक अपक्षय, लगातार फसलों के उगाने एवं लीचिंग के कारण इनकी उर्वरता नवनिर्मित मिट्टियों की अपेक्षा कम होती हैं।

(iv) **जलवायु (Climate)** : अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में लीचिंग के कारण अधिकांश विलेय पोषक तत्त्व निचले संस्तरों में चले जाते हैं जिसमें मृदा की ऊपरी सतह की उर्वरता कम हो जाती है। इसी प्रकार उष्ण कटिबन्ध वाले क्षेत्रों में अधिक ताप होने के कारण समशीतोष्ण की अपेक्षा कार्बनिक पदार्थ का विघटन सरलता एवं शीघ्रता से होता है, इसलिए इन क्षेत्रों की उर्वरता कम होती हैं।

(v) **मृदा प्रोफाइल की गहराई (Depth of Soil Profile)** : गहरी मृदा उथली मृदा की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है। गहरी मृदाओं में पौधों की जड़ें अच्छी प्रकार फैल जाती हैं और अधिक गहराई तक चली जाती हैं, इस प्रकार पोषक तत्त्व और जल अधिक मात्रा में लेती हैं। उथली मृदाओं में शुष्क दशा में सूखा के कारण पौधों की वृद्धि उचित रूप से नही हो पाती हैं।

(vi) **मृदा की भौतिक दशा (Physical Condition of Soil)** : मृदा की भौतिक दशा इस प्रकार की होनी चाहिये जिससे उसमें पौधों की वृद्धि हो सके तथा वायु एवं जल संचार पर्याप्त हो। मृदा की भौतिक दशा अच्छी होने पर उसकी जल धारण क्षमता अधिक होती है। मृदा उर्वरता पर मृदा कणाकार एवं संरचना का भी प्रभाव पड़ता हैं। बड़े आकार के कणों वाली मृदाओं में कणान्तरित छिद्र बड़े होते हैं, ऐसी मृदा में जल बड़ी शीघ्रता से नीचे की ओर जाता है तथा मृदा में जल शोषण शक्ति कम रहती है इन कारणों से ऐसी मृदा की उर्वरता कम होती है इसके विपरीत महीन कणों जैसे सिल्ट एवं क्ले के कारण मृदा की उर्वरता अधिक होती हैं।

(vii) **मृदा अपरदन (Soil Erosion)** : जब भूमि सतह से अतिरिक्त जल ढाल की ओर बहता है तो मिट्टी को काटकर बहा ले जाता है। मिट्टी के साथ–साथ पौधों के आवश्यक विलेय पोषक तत्त्व भी बह जाते हैं, जिससे मृदा उर्वरता कम होती है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि फसल जितना पोषक पदार्थ मृदा से अपने प्रयोग में लाती है, उसका 20 गुणा ह्रास मृदा अपरदन के कारण हो सकता है।

(viii) **मृदा में पौधों के पोषक तत्त्वों को प्रदान करने की क्षमता (Plant Nutrient Supplying Capacity of Soil)** : यह देखा गया है कि विभिन्न प्रकार की मृदाओं में अन्तर्निहित पोषक तत्त्वों की मात्रा भिन्न होती है। भारत की विभिन्न प्रकार की मृदाओं में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम में से किसी एक या दो पोषक तत्त्वों की कमी अवश्य पायी जाती हैं जिन मृदाओं में अन्तर्निहित पोषक तत्त्वों की मात्रा अधिक होती है उनकी उर्वरता भी अधिक होती हैं।

(ix) **जलाक्रांति (Water logging)** : जब मृदा में फसल की आवश्यकता से अधिक नमी होती है ओर उसके निकास का कोई प्रबंध नहीं होता है तो मृदा में वायु की कमी हो जाती है जिससे वायुजीवी बैक्टीरिया अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं कर पाते और हानिकारक बैक्टीरिया सक्रिय हो जाते हैं। ये बैक्टीरिया मृदा में हानिकारक अम्लों का निर्माण करते हैं जिससे मृदा अनुर्वर हो जाती है। अधिक पानी भरने से मृदा की भौतिक दशा भी खराब हो जाती है। जलाक्रांत से विलेय पोषक पदार्थ भी लीचिंग द्वारा

नीचे चले जाते हैं। जलाक्रांत दशा में जस्ता तत्त्व की प्राप्यता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सल्फेट के अवकरण से सल्फाइड बनने से गंधक की प्राप्यता भी कम हो जाती है। जलाक्रांत दशा में नाइट्रेट–नाइट्रोजन के निक्षालन और विनाइट्रीकरण की समस्या भी पैदा हो जाती है।

(x) **मृदा तापक्रम (Soil Tempreture) :** कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन और मृदा सूक्ष्मजीवों की सक्रियता तापक्रम से प्रभावित होती है। तापक्रम में वृद्धि होने पर अपक्षय अधिक होता है, फलतः क्ले की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत नाइट्रोजन, कार्बनिक पदार्थ, सिलिका, एल्युमिनियम और क्षार, एल्युमिनियम सिलिका अनुपात तापक्रम के अधिक होने से कम हो जाते हैं। तापक्रम में वृद्धि होने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ और नाइट्रोजन की मात्रा पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(xi) **मृदा पी.एच. (Soil pH) :** मृदा उर्वरता एवं पौधों के पोषक तत्त्वों की प्राप्यता मृदा पी.एच द्वारा प्रभावित होती है। अधिक अम्लीय मृदा में कोलाइडी जटिल (Colloidal Complex) पर विनिमेय Ca, Mg की मात्रायें कम रहती हैं, Fe, Al, Mn तथा Cu विलेय रूप में रहते हैं तथा इनकी अधिकता का पौधों पर विषैला प्रभाव होता है पौधों को N, P भी कम मात्रा में प्राप्त होते हैं इसलिए इन मृदाओं की उर्वरता कम होती है। क्षारीय मृदाओं में Ca, Mg की प्राप्य मात्रा अधिक तथा Fe, Mg, Cu आदि की प्राप्यता कम हो जाती है, इस प्रकार इन मृदाओं की उर्वरता भी कम होती है।

(xii) **मृदा कार्बनिक पदार्थ (Soil Organic Matter) :** कार्बनिक पदार्थ सड़ने पर पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों की विभिन्न मात्रा प्रदान करता है। इस प्रकार यह पौधों के पोषक तत्त्वों का भण्डार गृह होता हैं। प्रायः मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होने पर उसकी उर्वरता अधिक होती हैं।

मृदा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting Soil productivity) :

(i) **मृदा की भौतिक दशा (Soil physical condition) :** मृदा की उपयुक्त भौतिक दशा होने पर पौधों की वृद्धि अच्छी होती है, जिससे पैदावार अधिक होती है।

(ii) **खेतों की स्थिति (Location of Farm) :** अन्य कारकों के समान होने पर शहर के पास वाली मृदा अधिक उत्पादक होती हैं, क्योंकि शहर के पास होने के कारण शाक सब्जी अधिक उगाते है तथा इनको बाजार में बेचने में सुविधा होती है और अधिक मूल्य मिलता है।

(iii) **मृदा उर्वरता (Soil fertility) :** यदि मृदा में सभी आवश्यक खाद्य तत्त्व उचित मात्रा, अनुपात एवं प्राप्य अवस्था में उपस्थित हों, तो वह मृदा उपजाऊ होती है तथा इसकी उत्पादकता भी अधिक होती हैं।

(iv) **मृदा जुताई का ढंग व समय (Method and time of ploughing) :** ढालू खेतों की जुताई ढाल के लम्बवत करने से मृदा अपरदन कम होता है जिससे पोषक तत्त्व पानी के साथ बाहर नहीं जाते। समय पर भू–परिष्करण करने से मृदा उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(v) **फसल उगाने की प्रणाली (Cropping system) :** इकहरी खेती में एक निश्चित स्थान पर प्रत्येक वर्ष एक ही फसल उगायी जाती है। हर फसल अपनी जड़ों से एक प्रकार का विष निकालती है, यदि एक ही फसल एक ही स्थान पर काफी समय तक लगातार उगायी जाये तो जड़ों से निकले विष की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि मृदा विकृत हो जाती है तथा उसकी पैदावार देने की क्षमता घट जाती है। इस प्रकार प्रणाली में अमुक फसल की आवश्यकतानुसार प्रत्येक वर्ष निश्चित तत्त्वों का शोषण होता रहता है, फलस्वरूप उर्वरता क्षीण हो जाती है। वैज्ञानिक ढंग से फसल चक्र के अनुसार फसलें उगाने पर मृदा उर्वरता में ह्रास कम होता है। विभिन्न कारणों से फसल चक्र मृदा उर्वरता को सुरक्षित रखने में सहायक है यथा (i) दलहनी फसलों की राइजोबियम सहजीवता के कारण फसल चक्र द्वारा मृदा में कार्बनिक पदार्थ एवं नाइट्रोजन का योग होता है, (ii) मृदा अपरदन कम होने से उर्वरता में ह्रास कम होता है, (iii) फसलों की जड़ों द्वारा खाद्य तत्त्वों के शोषण का स्थान परिवर्तित होता रहता है, (iv) विषैले पदार्थों को बनने से रोकता है, (v) मृदा के भौतिक गुणों को सुधारता है।

मृदा उर्वरता का प्रबंध (Soil fertility management)

मिट्टी की उर्वरता किसी भी राष्ट्र के लिए बहुत महत्त्व रखती है। उपजाऊ मिट्टी की मात्रा एक सेंटीमीटर मोटी परत को बनाने में प्रकृति को लगभग 300 वर्ष लगते हैं, जबकि हमारे यहां हर साल 600 करोड़ टन मिट्टी कटाव के कारण बह जाती है और इसके साथ–ही–साथ 84 लाख टन पोषक तत्त्व भी बहकर चले जाते हैं। यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं कि मिट्टी और जल महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम इन प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किस प्रकार

करें। जीवन मिट्टी पर अवलंबित है क्योंकि सृष्टि में वनस्पतियों तथा प्राणियों का जीवन इसी से जुड़ा है। संपत्ति और समृद्धि का प्रतीक मिट्टी अपने आप में न जाने क्या–क्या छिपाए हुए हैं। मृदा से जुड़े वैज्ञानिक इसका अध्ययन विभिन्न तरह से करके इसकी उर्वरता/उत्पादकता को दर्शातें हैं और इसको संजोयें रखने के उपायों को सामने लाते हैं। मृदा उर्वरता निम्न तरीकों को अपनाकर सुरक्षित रखी जा सकती हैं।

(i) **उचित भू–परिष्करण क्रियायें (Proper Tillage operation) :** भू–परिष्करण क्रियाओं द्वारा मृदा में जल शोषण और धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है। वायु संचार एवं वायुमण्डल से मृदा में वायु का विनियम भी बराबर होता रहता हैं, मृदा में जड़ों का प्रवेश सरलतापूर्वक होता है तथा उचित समय (मृदा में क्षेत्र धारिता पर उपस्थित नमी) पर भू–परिष्करण क्रियाएँ करने से मृदा संरचना में सुधार होता है। मृदा में अधिक या कम नमी पर जुताई करने से कीचड़ और ढेले बन जाते हैं, जिससे संरचना खराब हो जाती है। लगातार अधिक जुताइयाँ संरचना के लिए हानिकारक होती हैं।

(ii) **उचित जल निकास एवं वायु संचार (Proper drainage and aeration) :** अधिक रिसाव होने पर मृदा में उपस्थित पोषक तत्त्व लिचिंग द्वारा नष्ट हो जाते हैं और पानी के रूकने पर उचित वायु संचार नहीं होता जिससे मृदा में CO_2 की मात्रा बढ़ जाने के कारण जड़ों के विकास में बाधा पड़ती हैं।

(iii) **मृदा उपरदन नियंत्रण (Soil erosion control) :** मृदा अपरदन के कारण पौधों के पोषक तत्त्व जैसे नाइट्रोजन, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि बहकर नष्ट हो जाते हैं। खेत के चारों ओर मेढ़ बन्दी या बाँध बनाकर, ढालू भूमि के ऊपरी भाग पर घास उगाकर, ढालू भूमि में ढाल के विपरीत दिशा में जुताई करके, ढालू भूमि में ढाल की ओर मेढ़ बाँधकर, बरसात के दिनों में शीघ्र पकने वाली फलीदार फसलें उगाकर इत्यादि कारकों द्वारा मृदा अपरदन पर कुछ हद तक नियंत्रण पाया जा सकता है।

(iv) **खरपतवार का नियन्त्रण (Weed Control) :** खरपतवार फसलों के साथ प्रकाश नमी एवं पोषक तत्त्वों के लिए स्पर्द्धा करते हैं। स्वच्छ बीज के उपयोग, पकने से पहले खरपतवारों को काटकर, खरपतवारों को हाथ से उखाड़कर उचित जुताई की प्रक्रिया अपनाकर, शीघ्रता से वृद्धि करने वाली फसल उगाकर, अवांछित खरपतवार को जलाकर, खेत में पानी भरकर, मल्च प्रक्रिया अपनाकर एवं उचित रसायनों के उपयोग से खरपतवार पर नियंत्रण किया जा सकता है।

(v) **मृदा में उचित जल संधारण (Proper Water retention) :** मृदा में अधिक एवं कम नमी दोनों ही मृदा गुणों एवं पौधों की वृद्धि के लिए हानिकारक है। खरपतवारों को नष्ट करके, मल्च का प्रयोग करके, उचित समय पर जुताई करके, शुष्क क्षेत्रों में खेतों को परती छोड़कर, वर्षा के पानी को रोककर एवं मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करके मृदा में उचित जल का संरक्षण किया जा सकता है।

(vi) **मृदा पी.एच. (Soil pH) :** अधिकांश फसलों की वृद्धि के लिए उदासीन मृदायें उपयुक्त होती हैं। अम्लीय मृदाओं में चूना का प्रयोग करके, क्षारीय मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ, रासायनिक सुधारकों का प्रयोग करके एवं अन्य यांत्रित विधियाँ अपनाकर समस्या ग्रस्त मृदाओं के पी. एच. मान को सुधारा जा सकता है।

(vii) **मृदा विकार एवं हानिकारक कीड़ों की रोकथाम :** मृदा विकार वह स्थिति है जिसमें लाभप्रद फसल उत्पादन के लिए फसल या फसलें नहीं उग पाती हैं। यह विकार मृदा की शक्ति क्षय होने, वर्षों तक निरन्तर एक ही फसल उगाने, फसलों द्वारा लिए गये खाद्य तत्त्वों की पूर्ति न करने या मृदा में क्षति पहुँचाने वाले लवण, जैसे Na_2CO_3 आदि, अधिक हो जाने से हो जाता है। मृदा में उचित भू–परिष्करण करके, कार्बनिक पदार्थ एवं पौधों को पोषक तत्त्वों से मृदा को परिपूर्ण करके, फसल चक्रों को अपनाकर, मृदा में उचित जल निकास सुनिश्चित कर एवं भूमि संरक्षण क्रियाओं को अपनाकर मृदा विकारों को पर्याप्त सीमा तक दूर किया जा सकता है।

बहुत से हानिकारक जीव मृदा में रहते है, कुछ सूक्ष्म जीव पौधों में अनेक प्रकार के रोग भी पैदा करते हैं। इन रोगों से फसल को बचाने के लिए रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करते हैं। गर्मी की जुताई से मृदा तेज धूप पड़ने के कारण सूख जाती है और हानिकारक कीड़े मर जाते हैं।

(viii) **उचित फसल चक्र का प्रयोग (Proper crop rotation) :** फसलों को हेर–फेर कर बोने से खरपतवारों की वृद्धि कम होती है तथा मृदा अपरदन कम होने से पोषक तत्त्वों का ह्रास कम होता है और उर्वरता लगभग समान बनी रहती है। फसल चक्र में मूसला जड़ वाली फसल के बाद रेशेदार जड़ वाली फसल उगाई जाती है, जिससे पोषक तत्त्वों की कमी एक निश्चित क्षेत्र में नहीं होती है तथा उर्वरता अधिक समय तक बनी रहती हैं। दलहनी फसलों में सहजीवी बैक्टीरिया द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को मृदा में स्थिर करके मृदा उर्वरता बढ़ाते हैं। दलहनी फसलें, मटर, चना, लोबिया, ग्वार, मूँग, उरद आदि हैं। अनुकूल परिस्थितियों में

इन फसलों द्वारा मृदा में लगभग 50–150 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्रति वर्ष का योग होता हैं।

(ix) **फार्म खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद एवं फसल अवशेष का प्रयोग (Use of Farmyard manure, compost, Vermicompost, Green manure and Crop residue) :** खादों में पौधों के लगभग सभी पोषक तत्त्वों का समावेश होता है, इसलिए इनको मृदा में मिलाने से मृदा उर्वरता में वृद्धि हो जाती हैं। हरी खाद वाली फसल उगाने से अवमृदा के पोषक तत्त्व जड़ों द्वारा ऊपरी सतह पर आ जाते हैं। इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में भी वृद्धि होती है।

(x) **उर्वरकों का प्रयोग :** विभिन्न प्रकार के उर्वरकों के उपयोग से मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है जिससे पौधों के ऊपरी भाग एवं जड़ों की वृद्धि उचित प्रकार से होती है। मिट्टी जाँच की प्रक्रिया से मृदा में उपस्थित पोषक तत्त्वों की मात्रा का आकलन कर उर्वरक अनुशंसा से समुचित उर्वरता का प्रबंधन किया जा सकता है।

2.6 पौधों के आवश्यक पोषक तत्त्व, उनके कार्य एवं कमी के लक्षण

पौधे की रासायनिक जाँच से पता चलता है कि इनमें साठ से भी अधिक तत्त्व मौजूद हैं। ये सभी तत्त्व पौधे के लिए आवश्यक नहीं है। 'आवश्यक तत्त्व उसे कहते हैं जिनके अभाव में पौधे अपना जीवनचक्र पूरा नहीं कर पाते हैं। आवश्यक पोषक तत्त्व पौधों के पोषण में सीधे रूप में कार्य करता है। इन आवश्यक तत्त्वों को 'पोषक तत्त्व' कहते हैं जिनकी संख्या सोलह है तथा इनके नाम हैं : कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाशियम, कैल्शियम, मैंगनेशियम, गंधक, जिंक, लोहा, ताँबा, मैंगनीज, बोरान, मौलिब्डेनम एवं क्लोरीन। इनमें से कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन की आपूर्ति वायुमण्डल में उपस्थित आक्सीजन गैस, कार्बन डाइआक्साइड गैस एवं जल से होती है। शेष तेरह तत्त्वों की आपूर्ति मिट्टी द्वारा की जाती है। पौधे को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाशियम की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है, अतः इन तत्त्वों को 'प्राथमिक पोषक तत्त्व' कहते हैं। कैल्शियम, मैंगनेशियम एवं गंधक की आवश्यकता पौधों को कुछ कम मात्रा में होती है, अतः इन्हें 'माध्यमिक या गौण पोषक तत्त्व' कहते हैं। शेष सात अर्थात् जिंक, लोहा, ताँबा, मैंगनीज, बोरान, मौलिब्डेनम एवं क्लोरीन की आवश्यकता पौधे को बहुत कम मात्रा में होती है, अतः इन्हें 'सूक्ष्म पोषक तत्त्व' कहते हैं। किसी भी मिट्टी में पोषक तत्त्वों की मात्रा निश्चित एवं सीमित है।

1. पादप पोषण में तत्त्वों की अनिवार्यता की कसौटी

वैज्ञानिक आरनोन के अनुसार आवश्यक पोषक तत्त्व वह है –

- जिसकी कमी के कारण पौधे अपने जीवन–चक्र को पूरा नहीं कर सकते हैं।
- किसी विशेष आवश्यक तत्त्व की कमी को केवल उसी तत्त्व को मृदा में प्रदान करके दूर किया जा सकता है, अर्थात् एक आवश्यक तत्त्व की कमी दूसरे तत्त्व से पूरा नहीं किया जा सकता है।
- यह पोषक तत्त्व पौधे के पोषण में सीधे सन्निहित होता है।

2. आवश्यक तत्त्वों का वर्गीकरण

आवश्यक तत्त्वों को पौधे की आवश्यकतानुसार तीन वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है–

अ) मुख्य पोषक तत्त्व : कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाशियम – पौधे को इन तीनों तत्त्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। अतः इन्हें मुख्य पोषक तत्त्व कहते हैं।

ब) गौण पोषक तत्त्व : कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर – ये भी पौधों को पर्याप्त मात्रा में चाहिए लेकिन इनका कार्य मुख्य पोषक तत्त्वों से कम माना जाता है।

स) सूक्ष्म पोषक तत्त्व : लोहा, जस्ता, तांबा, मैंगनीज, बोरान, मोलिब्डेनम एवं क्लोरिन। पौधे को इन पोषक तत्त्वों की केवल सूक्ष्म मात्रा (एक पी.पी.एम. से कम) में आवश्यकता होती है।

पौधों द्वारा प्रयुक्त तत्त्वों के रूप

पौधे मृदा से पोषकों को (1) एकाकी पोषकों जो अन्य तत्त्वों से संयुक्त नहीं होते हैं (2) आवश्यक तत्त्व जो अन्य तत्त्वों से संयोग करके नाइट्रेट, फॉस्फेट आदि बनाते हैं, के रूप में शोषित करते हैं।

असंयुक्त रूप से शोषित पोषक तत्त्व

पोषक तत्व	रूप
पोटैशियम	K^+
कैल्शियम	Ca^{++}
मैग्नीशियम	Mg^{++}
आयरन	Fe^{++}, Fe^{+++}
मैंगनीज	Mn^{++}, Mn^{+++}
कॉपर	Cu^{+}, Cu^{++}
जिंक	Zn^{++}
क्लोरिन	Cl^-

संयुक्त रूप या लवणों के रूप में शोषित पोषक तत्त्व

पोषक तत्व	रूप
नाइट्रोजन	NH_4^+, NO_3^-
फास्फोरस	HPO^{--}, $H_2PO_4^-$
सल्फर	SO_3^{--}, SO_4^{--}
बोरोन	BO_3^{---}
मोलिब्डेनम	MoO_4^{--}

3. पादप पोषण में आवश्यक तत्त्वों के विशिष्ट कार्य

मुख्य पोषक तत्त्व

कार्बन

पौधे वायुमंडल से अपने लिए कार्बन डाइ ऑक्साइड लेते हैं। प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन डाइऑक्साइड जल के साथ मिलकर ग्लूकोज और फ्रुक्टोज जैसी प्राथमिक शर्करायें बनाती हैं। पौधों का क्लोरोफिल नामक पिगमेंट सूर्य की प्रकाश ऊर्जा को ग्रहण करता है और कार्बन डाइआक्साइड तथा जल के सहयोग से जटिल रासायनिक क्रिया करके सरल शर्करायें बनाता है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में सूर्य की ऊर्जा पौधों के शरीर में संचित होती रहती है और उसके फलस्वरूप प्रथम कार्बोहाइड्रेट बनते हैं। इन कार्बोहाइड्रेट् से जटिल शर्कराओं, स्टार्च, हैमीसेल्यूलोज तथा सैल्यूलोज का निर्माण होता है। सरल शर्कराओं तथा हेक्सोज के बहुलीकरण से वसा पदार्थ तथा तेलों का भी संश्लेषण होता है।

ऑक्सीजन

पौधे को यह जल तथा CO_2 से मिलती है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में जल एवं CO_2 से मिलकर O_2 निकालता है तथा शर्कराओं का निर्माण करता है।

$6CO_2 + 6H_2O$ --------- $C_6H_{12}O_6 + 6O_2$

यह स्वतन्त्र ऑक्सीजन पौधों की वृद्वि एवं विकास में प्रयोग होती है। ऑक्सीजन पौधों में श्वसन तथा प्रकाश संश्लेषण क्रियाओं में प्रधान कार्य करती है।

हाइड्रोजन

हाइड्रोजन पौधे की वृद्वि के लिए जल से प्राप्त होती है। हाइड्रोजन ऑक्सीजन के साथ मिलकर जल बनाती है तथा कार्बन के

साथ मिलकर जटिल रासायनिक यौगिक बनाती है। पौधे द्वारा शोषित सम्पूर्ण जल मात्रा का केवल थोड़ा सा अंश इनकी वृद्धि में काम आता है। जिसकी पूर्ति के लिए पौधे को प्रचुर मात्रा में जल दिया जाता है।

नाइट्रोजन

नाइट्रोजन पौधे के क्लोरोफिल, एमीनो अम्ल, विटामिन्स, न्यूक्लिक अम्ल, प्रोटीन, एमाइड्स, एल्केलाइड्स तथा प्रोटोप्लाज्म की संरचना में सक्रिय भाग लेता है। यह एडीनोसिन ट्राइफास्फेट का एक अवयव है। पौधों में ऑक्सीन का बनना नाइट्रोजन की मात्रा से उत्तेजित होता है, क्योंकि पौधों का मुख्य ऑक्सिन बीटा इन्डौल एसीटिक अम्ल में नाइट्रोजन होती है और यह ट्रिप्टोफेन एच. एमीनो अम्ल के भौतिक रासायनिक परिवर्तन से बनती है। नाइट्रोजन से स्टार्च के जल विश्लेषण में तथा विभिन्न प्रकार की शर्कराओं में कार्बनिक अम्लों में परिवर्तन होने में मदद मिलती है।

फॉस्फोरस

यह फॉस्फोप्रोटीन, फाइटिन, फॉस्फोलिपाइड्स तथा न्यूक्लिक अम्ल जो कोशिका विभाजन को प्रभावित करता है का एक आवश्यक अवयव है। ऊर्जा के रूपान्तरण में फॉस्फोरस एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और वसा तथा प्रोटीन उपापचय में हाथ बँटाता है। फॉस्फोरस उत्तकों के श्वसन में भी सहायक होता है। यह ऑक्सीडेस एन्जाइम्स की सक्रियता को बढ़ाता है। अकार्बनिक फास्फेट्स पौधों के कोशारस में विलेय होकर प्रत्यारोधक का कार्य करते हैं तथा नाइट्रोजन के हानिकारक प्रभावों को कम या उदासीन करता है। पौधों में कीटों के आक्रमण को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। इसके कारण पौधों पर फूल शीघ्र आते हैं, बीजों के निर्माण में सहायक है तथा फसलों को शीघ्र पकाता है। पौधों के जड़ के विकास में सहायक होता है।

पोटैशियम

प्रोटीन संश्लेषण में संलग्न एन्जाइम के अतिरिक्त पोटैशियम कार्बोहाइड्रेट्स तथा न्यूक्लिक अम्ल मेटाबोलिज्म में संलग्न अनेकों एन्जाइम के लिए सक्रिय कारक होता है। यह अनेकों एमीनो अम्ल से क्रिया करने वाले एन्जाइम का सक्रिय कारक होता है। एमीनों अम्ल समावेशन तथा प्रोटीन्स के संश्लेषण में काफी वृद्धि करता है। यह कार्बोहाइड्रेट्स के स्थानान्तरण में सहायक होता है। यह आयरन वाहक के रूप में अनेकों प्रकार की ऑक्सीकरन तथा अवकरण प्रतिक्रियाओं में सहायक होता है। यह पत्तियों में शर्करा एवं स्टार्च के निर्माण में वृद्धि करता है। यह पौधों की उपापचय सक्रियता से उत्पन्न कार्बनिक अम्लों को उदासीन करता है। पोटैशियम अधिक चल होता है। अतः नई विभाज्योत्तकों में सामान्य कोशिका विभाजन को बढ़ाता है। यह रोग एवं कीट का अवरोधक है तथा जल उपयोग क्षमता का बढ़ाता है।

द्वितीय या गौण पोषक तत्त्व

कैल्शियम

कैल्शियम का अधिकांश भाग पत्तियों के बीच पटलिका यूरोनिक अम्ल के लवण के रूप में पाया जाता है। पौधों की जड़ के शिरों के विभाज्योतकों की सक्रियता तथा नये उत्तकों के निर्माण में आवश्यक तत्त्व है। पौधे की मेटाबोलिज्म में स्वतन्त्र हुए कार्बनिक अम्लों को उदासीन करता है। इस प्रकार यह एक आविष्कारी कारक का कार्य करता है। कैल्शियम की न्यूनता की परिस्थिति में विलेय न्यूक्लियोटाइड्स बढ़ जाती है और न्यूक्लिक अम्ल का संश्लेषण घट जाता है। कार्बोहाइड्रेट्स के स्थानान्तरण में सहायक है।

मैग्नीशियम

मैग्नीशियम क्लोरोफिल का एक अवयव है, अतः इसके बिना कोई पौधा हरा नहीं हो सकता। यह फॉस्फोरस को ग्रहण करने तथा इसके स्थानान्तरण में सहायक होता है। वसीय अम्लों तथा तेलों के संश्लेषण में आवश्यक है। यह कार्बोहाइड्रेट्स मेटाबोलिज्म से संबंधित कई एन्जाइम की सक्रियता के लिए आवश्यक होता है। पौधे में नाइट्रोजन मेटाबोलिज्म से संबंधित कई फॉस्फोराइलेशन क्रियाएँ मैग्नीशियम द्वारा उत्प्रेरित होती है। यह पौधों में शर्कराओं एवं स्टार्च के स्थानान्तरण में सहायक होता है।

सल्फर

यह सल्फर युक्त ऐमीनो अम्लों – सिस्टाइन, सिस्टीन तथा मिथियोनीन तथा प्रोटीन संश्लेषण में आवश्यक होता है। यह कुछ विटामिन्स, को–एन्जाइम तथा ग्लूटेथोयोन का एक अवयव है। यह क्लोरोफिल के निर्माण में भी सहायक होता है। डाइसल्फाइड

बन्धक (-S-S-) प्रोटोप्लाज्म की संरचना से संगुणित होता है तथा सल्फाहाइड्रिल समूहों (-SH) की मात्रा पौधों में ठंढ प्रतिरोधकता में वृद्वि करती है। यह कुछ प्रोटियोलिटिक एन्जाइम्स जैसे पपेनस की क्रिया को प्रोत्साहित करता है।

सूक्ष्म पोषक तत्त्व

यह देखा गया है कि पौधों की अच्छी वृद्वि के लिए कुछ तत्त्व अधिक मात्रा में तथा कुछ तत्त्व कम मात्रा में आवश्यक होते हैं। जो तत्त्व पौधों द्वारा अल्प मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं, उसे सूक्ष्म पोषक तत्त्व कहते हैं। इस समूह में आयरन, कॉपर, जिंक, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्डेनम तथा क्लोरीन सम्मिलित है।

आयरन

क्लोरोफिल निर्माण के लिए आवश्यक तत्त्व है, यद्यपि आयरन क्लोरोफिल का अंग नहीं है। पौधों द्वारा नाइट्रोजन के पोषण और प्रोटीन–संश्लेषण में सहायक होता है। आयरन पादप कोषो में होने वाले आक्सीकरण–अवकरण में उत्प्रेरक का कार्य करता है। यह कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक है तथा बहुत से आक्सीकारी एन्जाइम्स जैसे कैटालेज, पराक्सीडेज एवं साइटोक्रोम बी एवं सी का संघटक होता है। श्वसन क्रिया में यह ऑक्सीजन वाहक का कार्य करता है।

जिंक

यह एल्कोहल, डिहाइड्रोजिनेस, कार्बोनिक एनहाइड्रेस एवं पेप्टीडेस एन्जाइम का अंग है। यह पौधों की वृद्वि को प्रोत्साहित करने वाले पदार्थ ऑक्सीजन के सान्द्रण को नियमित करता है। प्रोटीन केरोटीन तथा सिट्रीन के संश्लेषण में सहायक होता है तथा कार्बोहाइड्रेट्स के रूपान्तरण में आवश्यक है। यह क्लोरोफिल निर्माण में एक उत्प्रेरक का कार्य करता है। पौधों द्वारा जल के अवशोषण को बढ़ाता है। यह इनोलेस, आक्जेलो एसिटिक डिकार्बोक्सीलेज, लेसीथिनेज, सिस्टीन डीसल्फहाइड्रेस आदि एन्जाइमों की सक्रियता बढ़ाता है।

कॉपर

कॉपर अप्रत्यक्ष रूप से क्लोरोफिल निर्माण और आयरन के उपयोग में सहायक होता है। कॉपर से पौधों का श्वसन प्रक्रिया भी प्रभावित होता है। यह टाइरोसिनेस, एस्कोर्बिक अम्ल ऑक्सीडेस, मोनोफिनोल आक्सीडेस आदि एन्जाइम्स का मुख्य अवयव है। वह एन्जाइम पौधों में ऑक्सीकरण क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है। यह क्लोरोफिल के विनाश को रोकता है। यह पौधों में इन्डोल ऐसिटिक अम्ल के संश्लेषण में सहायक है। यह पौधों में एमीनों अम्ल के साथ मिलकर अनेक एमीनों यौगिक और प्रोटीन बनाता है। प्रोटीन मेटाबोलिज्म में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मैंगनीज

यह क्लोरोफिल निर्माण में सहायक होता है तथा आर्जिनेस, सिस्टीन डिसल्फहाइड्रेस, हेक्साकाइनेस, डिऑक्सीराइबोन्यूक्लियेस आदि को सक्रिय बनाता है जो कि पौधों में नाइट्रोजन, कार्बोहाइड्रेट मेटाबोलिज्म तथा क्रेब चक्र की क्रियाओं में आवश्यक है। यह नाइट्रेट के स्वांगीकरण में सहायक है तथा ऑक्सीकरण–अवकरण में उत्प्रेरक का कार्य करता है। मैंगनीज की कमी से फसलों में अवकृत शर्कराओं तथा सुक्रोज की मात्रा कम हो जाती है।

बोरोन

कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण एवं प्रोटीन तथा पानी के उपापचयन, कोशिका विभाजन व कॉरटेक्स के विकास के लिए आवश्यक है। पौधों द्वारा नाइट्रोजन के शोषण में सहायक होता है। यह पोटैशियम कैल्शियम अनुपात को नियंत्रित करता है और पौधों द्वारा कैल्शियम एवं पोटैशियम उपयोग के लिए आवश्यक है। पराग तथा प्रजनन क्रियाओं में सहायक है। यह पुष्प, फल और बीज बनाने की क्रिया को भी प्रभावित करता है। पेक्टिन, ए.टी.पी., डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. के संश्लेषण के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में फलीदार पौधों में सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए जड़ ग्रन्थियों का निर्माण रूक जाता है।

मोलिब्डेनम

यह एजोटोबैक्टर तथा राइजोबियम बैक्टीरिया द्वारा मुक्त नाइट्रोजन के स्थिरीकरण के लिए अति आवश्यक है। यह एस्कार्बिक अम्ल (विटामिन सी) के संश्लेषण में आवश्यक है। यह फॉस्फोरस मेटाबोलिज्म को भी प्रभावित करता है। यह नाइट्रेट रिडक्टेस एन्जाइम का महत्त्वपूर्ण भाग है जहां यह इलेक्ट्रान वाहक का कार्य करता है। यह जेन्थीन ऑक्सीडेस एन्जाइम की सक्रियता के

लिए भी आवश्यक है। शर्कराओं के संश्लेषण के लिए आवश्यक है तथा पौधे में अमोनियम तथा नाइट्रेट अवकरण के लिए आवश्यक है।

क्लोरीन

रसाकर्षण दाब को बढ़ाता है। कोशिका रस में धनायन संतुलन बनाये रखता है। इसकी कमी से पौधों में एमीनों अम्ल एकत्र हो जाते हैं, इसलिए यह पौधों में प्रोटीन संश्लेषण को प्रभावित करता है। यह एन्थोसायनिन्स का संघटक पदार्थ होता है।

4. पोषक तत्त्वों के कमी के लक्षण

नाइट्रोजन

पौधों की पत्तियों का रंग पीला या हल्का हरा हो जाता है। पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है या रूक जाती है अतः पैदावार में कमी होती है। दाने वाली फसलों में सबसे पहले पौधों की निचली पत्तियाँ सूखना प्रारम्भ कर देती है और धीरे–धीरे ऊपर की पत्तियाँ भी सूख जाती है। गेहूं, धान तथा अन्य फसलों जिनमें कल्ले का निर्माण (टिलर फार्मेशन) होती है, इसकी कमी से कल्ले (टिलर) कम बनते हैं। फलों वाले वृक्षों में अधिकतर फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं, फलों का आकार भी छोटा रहता है, परन्तु फलों का रंग बहुत अच्छा हो जाता है। पत्तियों का रंग सफेद हो जाता है और कभी–कभी पौधों की पत्तियाँ जल भी जाती हैं। हरी पत्तियों के बीच–बीच में सफेद धब्बे भी पड़ जाते हैं।

फास्फोरस

फास्फोरस की कमी से पौधों का रंग प्रायः गहरा हरा ही रहता है, पर उनकी निचली पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती है। पौधों की वृद्धि रूक जाती है और उनकी पत्तियाँ छोटी रह जाती है। इसके अभाव में पर्णवृन्तों पर बैंगनी रंग हो जाता है। मक्का में इसके अभाव से पत्तियाँ बैगनी हरी हो जाती है, फसल देर से पकती है। गन्ने में इसकी कमी से पत्तियाँ सकरी और नीली हरी हो जाती है। फॉस्फोरस की कमी होने पर कपास के पौधों का रंग गहरा हरा होता है और शाखायें तथा पत्तियाँ छोटी रह जाती है।

पोटैशियम

पोटैशियम की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पौधों की परिपक्वता पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इन पत्तियों के किनारे झुलसे हुए दिखाई पड़ते हैं इसका कारण यह है कि पत्तियों में प्यूट्रेसिन जो एक डाइएमिन है, अधिक मात्रा में एकत्रित होता है। अनाजों की फसलों में इसकी कमी से तने पतले हो जाते हैं तथा अधिक कमी से पत्तियाँ झुलस जाती है। दलहनी पौधे में इसकी कमी का पहला लक्षण पत्तियों के किनारे पर चकत्ते के रूप में देखा जाता है। बाद में यह चकते जल्दी ही सूख जाती है पौधों की वृद्धि नहीं होती और वह बौने रह जाते हैं। सर्व प्रथम पौधों में इसकी कमी का लक्षण पत्तियों की टीप से प्रारम्भ होता है तथा उसके उपरान्त पत्ती के दोनों किनारा से सूखना शुरू होता है।

सल्फर

सल्फर की कमी होने पर सबसे पहले नयी पत्तियाँ प्रभावित होती है तथा ये पत्तियाँ पीली पड़ जाती है। दलहनी पौधे की नयी पत्तियों का रंग हल्के हरे से पीला तक हो जाता है। सब्जी के पौधों में पत्तियों का रंग हरा पीला हो जाता है और वे मोटी तथा कड़ी हो जाती है। सल्फर की कमी से आलू की पत्तियों का रंग पीला, तने कठोर तथा जड़ों का विकास कम हो जाता है। तम्बाकु में वृद्वि की प्रारम्भिक अवस्था में सम्पूर्ण पौधे का रंग हल्का हरा हो जाता है। पत्तियाँ नीचे की ओर मुड़ जाती है तथा वृद्वि भी रूक जाती है।

कैल्शियम के कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी होने पर पहले पौधों के किसी भी भाग पर विशेष लक्षण दिखाई नहीं पड़ते, परन्तु अधिक कमी होने पर नयी कली एवं पत्तियों पर सबसे पहले प्रभाव पड़ता है। पौधों की पत्तियों का आकार छोटा और विकृत हो जाता है, किनारे कटे–फटे होते हैं तथा इनके ऊपर ऊतक–क्षय के धब्बे पाये जाते हैं। जड़ों का विकास कैल्शियम की कमी से समुचित नहीं हो पाता है। फूलगोभी, पत्तागोभी और गाजर की फसलों के लिए कैल्शियम की कमी होने पर इनकी पत्तियाँ छोटी रह जाती हैं तथा किनारों पर मुड़ जाती हैं, इनके तने कमजोर हो जाते हैं। दलहनी पौधें में कैल्शियम की कमी के कारण जड़ों में कम और छोटी ग्रन्थियाँ पैदा होती हैं। आलू के पौधे झाड़ी की तरह हो जाते हैं। पत्रक आकार में छोटे हो जाते हैं। ट्यूबर का निर्माण बुरी तरह प्रभावित होता है तथा उनकी संख्या कम एवं उनका विकास नहीं होता है।

मैग्नीशियम

इसकी कमी के लक्षण सबसे पहली पुरानी पत्तियों में दिखाई देते हैं और धीरे–धीरे नयी पत्तियों पर भी इसका प्रभाव बढ़ता जाता है। जिन पौधों में मैग्नीशियम की कमी होती है उनमें हरिमाहीनता पैदा हो जाती है और पत्तियों पर धारियाँ बन जाती हैं। इसकी अधिक कमी होने से पत्तियाँ अन्दर ही मुड़ जाती हैं और पीली पड़ जाती हैं। छोटे अनाजों की फसलों में पौधे बौने रह जाते हैं और पीले पड़ जाते हैं। कभी–कभी पत्तियों पर हरे रंग के चकते दिखायी देते हैं। दलहनी पौधे में पत्तियों की मुख्य नसों के बीच की जगह पीले रंग की हो जाती है जो बाद में गहरे पीले रंग की हो जाती है।

जिंक

जिंक की कमी होने पर सामान्यतः पौधों में सबसे पहले वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है और तने की लम्बाई घट जाती है तथा पत्ती मुड़ जाती है। धान में जस्ते की कमी को 'खैरा रोग' के नाम से जाना जाता है। पौधों के ऊपर से तीसरी या चौथी पत्ते के पटल के बीच में गहरे भूरे या लाल भूरे रंग के धब्बे बनना प्रारम्भ हो जाते हैं। ये लक्षण रोपाई के 10–15 दिन बाद दिखायी देना प्रारम्भ हो जाते हैं। गेहूं में जिंक की कमी के लक्षण प्रायः बुआई के 20 से 30 दिन बाद प्रकट होते हैं। कमी के लक्षण आरम्भ में नीचे से तीसरी या चौथी पुरानी पत्तियों के बीच में हल्के पीले रंग के अनियमित धब्बे दिखायी देते हैं। ये धब्बे बाद में बड़े होकर आपस में मिल जाते हैं। जिससे पूरी पत्ती सफेद पीली और हरी चित्तियों में बदल जाती है और शिथिल होकर नीचे गिर जाती है। मक्का के पौधे में जिंक की कमी से 'सफेद कली' रोग हो जाता है। खिलती हुई कलियों की पत्तियाँ सफेद या हल्के पीले रंग की हो जाती है।

आयरन

आयरन की कमी का सामान्य प्रभाव हरिमाहीनता होता है जो प्रायः पौधों के नवीन भागों पर पहले पैदा होती है। इसकी कमी से पौधे छोटे एवं कमजोर होते हैं। पत्तियाँ पीली पड़ जाती है। विशेषकर फल वाले पेड़ों में यह पीलापन पत्तियों की शिराओं के बीच में होता है। सब्जी की फसलों में पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है तथा बाद में सारी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। दलहनी पौधे में पत्तियाँ पीली पड़ जाती है तथा उनकी शिराये हरी रहती हैं। नींबू वर्गीय पेड़ों में पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ने के साथ–साथ टहनियां भी सूखती जाती है। बहुत से फल अधपके रहकर गिर जाते हैं और वृद्धि दर घट जाने से फल पूरी तरह न पकने के साथ हल्के रंग के ही रहते है।

कॉपर

धान्य के फसलों में कॉपर की कमी से रिक्लेमेशन नामक बीमारी हो जाती है। जिसमें नवीन पत्तियाँ शिथिल व हरिमाहीन हो जाती है और मुड़ी हुई रहती है। पत्तियों की नोक सफेद पड़ जाती है। टिलर्स कमजोर हो जाते हैं। दलहनी फसलों में पत्तियों का रंग हल्का हरा हो जाता है, पौधों की वृद्धि कम हो जाती है और पत्तियाँ सूखकर गिरने लगती है।

मैंगनीज

मैंगनीज के अभाव का प्रथम लक्षण पत्तियों की अन्तः शिराओं में छोटे–छोटे हरिमाहीन धब्बों का विकसित होना है। अधिक कमी होने पर ये धब्बे हल्के हरे रंग से बदल कर पीले या भूरे सफेद हो जाते हैं। बाद में पौधों की वृद्धि रूक जाती है। अनाज की फसलों में इसकी कमी से पत्तियाँ भूरे रंग की और पारदर्शी हो जाती है। इसके बाद उसमें उत्तक गबन रोग पैदा हो जाता है। मैंगनीज की कमी से जई की भूरी चित्ती, गन्ने का अंगमारी, चुकन्दर का चित्तीदार पीला रोग, मटर का पैक चित्ती रोग उत्पन्न होते हैं। मैंगनीज की कमी के लक्षण सबसे पहले नयी पत्तियों पर दिखाई देते हैं।

बोरान

बोरान के अचल तत्त्व होने के कारण इसकी कमी के लक्षण प्रायः नई निकलती पत्तियों में पाये जाते है। इसकी कमी होने पर पत्तियाँ मोटी होकर मुड़ जाती है। जड़े नहीं बढ़ती, मुख्य तने की फुनगी या सिरा मर जाता है। फूल तथा फल नहीं लगते और पत्तियाँ भंगुर हो जाती है। फ्लोएम तथा जाइलम क्षतिग्रस्त हो जाने से पौधे की मृत्यु हो जाती है। फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं। चुकन्दर में आंतरिक गलन, सेव में आंतरिक काक्र, एल्फाल्फ में पीली फुनगी, शलजम में भूरा आंतर, तम्बाकू में शिखर व्याधि आदि बोरान की कमी के कारण रोग होते हैं।

मौलिब्डेनम

मौलिब्डेनम की कमी के लक्षण लगभग नाइट्रोजन की कमी के लक्षण के समान होते हैं । पत्तियों की शिराओं के बीच में हरिमाहीनता हो जाती है। पत्तियों का रंग पीला हरा या पीला हो जाता है तथा इस पर नारंगी रंग का चितकबरापन आ जाता है। पत्तियाँ मुरझा जाती हैं, ऊतकक्षय प्रारम्भ हो जाती है और अन्त में पत्तियाँ गिर जाती हैं। जौ, आलू, सरसो व तम्बाकू में बीच वाली पत्तियाँ प्रभावित होती हैं। दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियों की संख्या कम व आकार छोटा हो जाता है। नींबू जाति के पौधों में इसकी कमी से पत्तियों में पीला धब्बा पड़ जाता है जिसे येलोस्पाट नामक रोग कहते हैं। घास वाली फसलों में मौलिब्डेनम की कमी से पत्तियाँ व तने पीले पड़ जाते हैं पौधे छोटे रह जाते हैं और पत्तियों पर पीले धब्बे पड़ जाते हैं।

क्लोरीन

प्रायः मृदा में इसकी कमी नही होती परन्तु बलुई मृदा में इसकी कमी हो सकती है। क्लोरीन की अधिक कमी होने पर पौधे के पर्णक की नोक मुरझा जाती है। ऊतकक्षय हो जाता है, हरिमाहीनता बढ़ती है, इसके बाद कॉस्यन होती है और अन्त में पत्ती मर जाती है। अधिक कमी की अवस्था में पौधों पर फल नहीं बनता है।

2.7 पोषक तत्त्वों की पर्याप्तता और विषाक्त स्तर

क्रान्तिक स्तर (Critical Limit)

क्रान्तिक सीमा वह सीमा है जिसमें किसी भी पोषक तत्त्व का सान्द्रता एक सीमा से कम होने पर पौधे की बढ़वार प्रभावित होता है। जब किसी मृदा में किसी पोषक तत्त्व का स्तर क्रान्तिक सीमा से कम होने पर उर्वरक प्रयोग कर प्रतिक्रिया प्राप्त होता है उसे क्रान्तिक सीमा कहते हैं। क्रान्तिक सीमा को मृदा तथा पौधे में दर्शाया जा सकता है।

तालिका : पोषक तत्त्वों की मृदा में क्रान्तिक सीमा

पोषक तत्व	क्रान्तिक सीमा		
	कम	मध्यम	उच्च
N (कि.ग्रा./हे.)	<250	250-500	>500
P (कि.ग्रा./हे.)	<10	10-25	>25
K (कि.ग्रा./हे.)	<125	125-300	>300
S (कि.ग्रा./हे.)	<10	10-15	>15
Ca	< 50% cation exchange capacity		
Mg	< 4% cation exchange capacity		
Zn (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	<0.78	0.78-1.20	>1.20
Fe (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	<7.0	7-12	>12
Mn (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	<3.0	3-5	>50
Cu (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	<0.6	0.6-1.2	>1.2
B (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	<0.5	0.5-1.0	>1.0
Mo (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	<0.2	0.2-0.5	>0.5

कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द (टर्म) जो पौधे में पोषक तत्त्वों की स्तर से संबंधित है इस प्रकार हैं :

1. **कमी** : जब आवश्यक पोषक तत्त्व का स्तर मृदा में बहुत कम होती है तब वह फसल के उत्पादन को प्रभावित करता है तथा पौधे में कमी के लक्षण को प्रकट करता है। अत्यधिक कमी की स्थिति में कभी–कभी पौधे सूख जाती है।
2. **पर्याप्त** : जब पौधे को बढ़वार के लिए तत्त्वों की मात्रा मृदा में पर्याप्त होती है।
3. **अत्यधिक** : जब मृदा में आवश्यक पोषक तत्त्व की मात्रा अत्यधिक हो तथा उससे दूसरे पोषक तत्त्व की मात्रा प्रभावित होती है।

4. **विषैला :** जब आवश्यक पोषक तत्त्व या दूसरे तत्त्व की मात्रा मृदा में अत्यधिक हो तथा उससे पौधे पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उसे विषैला तत्त्व कहा जाता है।

पोषक तत्त्वों की पर्याप्तता

पौधे की जाँच कर हम यह पता लगाते हैं कि उसमें पोषक तत्त्वों की कुल मात्रा कितनी है। पौधों की जाँच विभिन्न बढ़वार अवस्था पर करते हैं। जैसे कल्ले निकलने के समय, बाली निकलने के पूर्व, बाली निकलने के बाद तथा परिपक्वता के अवस्था पर। पौधों की जाँच दो विधियों द्वारा की जाती है –

1. उत्तक जाँच

उत्तक की जाँच प्रायः खेतो में की जाती है। खेतो में हरे पौधे का रस लेकर उसकी जाँच की जाती है। पौधे के रस (sap) की जाँच प्रायः नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश के लिए किया जाता है। पौधे की रस जो पौधे के कोशिका से लेकर अभिकर्मक (Reagent) द्वारा की जाती है। अभिकर्मक डालने पर एक रंग बनता है तथा रंग की तीव्रता की तुलना कर उसकी कमी या अधिकता का पता लगाया जाता है। प्रायः जो पत्ती हाल में परिपक्व हुआ हो उसका चयन किया जाता है। पत्तियों की जाँच प्रायः सुबह अथवा दोपहर के बाद किया जाता है। उत्तक जाँच तरीका का महत्त्व धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है क्योंकि इसकी जाँच का तरीका आसान तथा कम खर्चीला होता है।

2. पौधों की पूरी जाँच

पौधों की पूरी जाँच का उद्देश्य यह है कि उसमें किसी भी पोषक तत्त्व की कुल सान्द्रता कितनी है। जैसे–जैसे यंत्रो का विकास हो रहा है यह जाँच आसान होता जा रहा है। इसमें एटोमिक एब्जोर्पसन स्पेक्ट्रोफोटो मीटर तथा इण्डक्टिव कपल्ड प्लाजमा इमिशन स्पेक्ट्रोफोटो मीटर यंत्रो का उपयोग किया जाता है। इस यंत्र के द्वारा प्रायः सभी पोषक तत्त्वों की जाँच की जा सकती है। पत्ती का नमूना लेते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए : (1) बीमारी वाली पत्तियाँ (2) कीट से प्रभावित पत्तियाँ (3) मृत कोशिका तथा सूखी पत्तियाँ तथा (4) मनुष्य द्वारा क्षति की हुई पत्तियों का चयन नहीं करना चाहिए।

तालिका : फसल के भाग तथा संख्या का चयन (जोन्स तथा स्टैन 1973)

फसल	बढ़वार अवस्था	पौध का भांग	पौध की संख्या
गेहूँ	सीडलिंग अवस्था	जमीन के ऊपर का सारा भाग	50–100
धान	बाली निकलने के पूर्व	ऊपर से चार पत्ती	50–100
जौ	बाली निकलने के पूर्व	ऊपर से चार पत्ती	50–100
मक्का	सीडलिंग अवस्था	जमीन के ऊपर का सारा भाग	20–30
	धनबाल	सारी परिपक्व पत्तियां	15–25
बीन	सीडलिंग अवस्था	जमीन के ऊपर का सारा भाग	20–30
	फूल निकलने से पूर्व	ऊपर से दूसरा या तीसरा पूर्ण परिपक्व पत्तियां	20–30
चुकन्दर	मध्य मौसम	पूर्ण फैलाव तथा परिपक्व पत्तियां	30–40
मुंगफली	फूल निकलने से पूर्व	मुख्य तना की परिपक्व पत्तियां	40–50
कपास	फूल निकलने से पूर्व	मुख्य तना की नयी पत्तियां	30–40
गन्ना	चार महिना के बाद	ऊपर से तीसरा या चौथी पूर्ण परिपक्व पत्तियां	15–20
जई	हेडींग अवस्था	ऊपर से दूसरी पत्ती	15–25

तालिका : पौधे में मुख्य एवं द्वितीयक पोषक तत्त्वों की पर्याप्ता सीमा

फसल	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फॉस्फोरस (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)	कैल्शियम (प्रतिशत)	मैग्नीशियम (प्रतिशत)	सल्फर (प्रतिशत)
गेहूँ	2.7 -3.5	0.3 -0.5	2.0 -3.0	0.3 -0.6	0.2 -0.4	0.2 -0.4
धान	2.6 -3.0	0.26 -0.50	1.5 -3.0	0.2 -2.0	0.15 -0.50	0.15 -0.40
मक्का	2.5 -4.0	0.3 -0.5	1.8 -2.6	0.4 -1.0	0.2 -0.4	0.2 -0.6
जौ	1.3 -3.0	0.2 -0.4	1.0 -3.0	0.2 -0.5	0.1 -0.4	0.1 -0.4
आलू	3.0 -4.5	0.25 -0.50	2.0 -6.0	0.5 -4.0	0.5 -1.5	0.2 -0.5
टमाटर	3.5 -5.0	0.30 -0.65	3.5 -4.5	1.3 -3.0	0.35 -1.0	0.2 -1.0
बरसीम	2.5 -5.0	0.2 -0.5	1.0 -2.0	1.0 -2.0	0.2 -0.5	0.2 -0.5

तालिका : पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की पर्याप्त सीमा (पी.पी.एम.)

फसल	जिंक	कॉपर	आयरन	मैंगनीज	बोरान
गेहूँ	20-60	5-25	25-200	25-150	4-30
धान	15-70	2.5-25.0	20-250	15-100	5-25
मक्का	20-70	7-20	30-200	20-150	5-25
जौ	12-40	5-20	25-200	25-150	5-15
आलू	20-70	5-25	70-250	20-100	15-40
टमाटर	18-80	5-35	50-300	25-200	30-75
बरसीम	15-40	7-15	30-150	30-100	20-60

भारी धातु (हैवी मेटल)

वह तत्व जिसका घनत्व 5 ग्राम/से.मी.^{3} से ज्यादा होता है, उसे भारी धातु कहते हैं। कुछ भारी तत्त्व पौधे एवं मनुष्यो के लिए आवश्यक होते हैं परन्तु अधिक सान्द्रता पर यह विषाक्त हो जाते हैं। कुल 76 ट्रेस तत्त्व मृदा में पाये जाते हैं। ये कई तरह के अकार्बनिक संदूषित पदार्थ (कॉन्टामिनेन्ट्स) हैं। जैसे मरकरी, कैडमियम, लेड, आसैनिक, निकेल, कॉपर, जिंक, मैंगनीज इत्यादि। इसमें से कैडमियम तथा आसैनिक अत्यधिक जहरीला होता है। मरकरी, लेड तथा निकेल मध्यम विषैला होता है तथा कॉपर, जिंक तथा मैंगनीज कम विषाक्त होते हैं।

तालिका : मृदा तथा पौधों में भारी धातु की सान्द्रता

भारी धातु	मृदा में सान्द्रता (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	पौधा में सान्द्रता (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)
आसैनिक	0.1–40.0	0.1–5.0
कैडमियम	0.1–7.0	0.2–0.8
लेड	2–200	0.1–10.0
निकेल	10–1000	1

जिंक, कॉपर, मैंगनीज एवं निकेल

ये तत्त्वों की अभिक्रिया, पी.एच. मान, कार्बनिक पदार्थ, मृदा की रिडक्स स्तर द्वारा प्रभावित होती है। ये तत्त्व मृदा के कार्बनिक पदार्थ के साथ चीलेट का निर्माण करते हैं। इन तत्त्वों का तुलनात्मक शक्ति प्रायः कॉपर निकेल जिंक मैंगनीज होती है।

लेड

मृदा लेड प्रायः पौधे को प्राप्त नहीं होता है। दूसरे विषैला धातु की तुलना में लेड मृदा में कम घुलनशील होता है। लेड का ज्यादा सान्द्रता मृदा की ऊपरी सतह पर पाया जाता है। चूना के प्रयोग से इसकी उपलब्धता एवं उदग्रहण कम होती है। अतः लेड पादप को ज्यादा विषाक्त नहीं करता है।

आसैनिक

आसैनिक से बने पेस्टीसाइड्स का बहुत समय से प्रयोग करने पर मृदा में आसैनिक की मात्रा बढ़ती है तथा पौधो को प्रभावित करती है। मृदा में आसैनिक का स्वभाव प्रायः फास्फोरस की तरह होता है। आसैनिक मृदा में ऋणात्मक रूप (AsO_4^{3-}) के रूप में पाया जाता है। आसैनिक की विषाक्त को जिंक, आयरन तथा एल्युमिनियम के सल्फेट के प्रयोग से कम किया जा सकता है।

कैडमियम

कैडमियम मनुष्य, जीव एवं पौधों के लिए विषाक्त एवं जहरीला होता है। कैडमियम की विषाक्तता प्रदूषण, वातावरण, एवं जीव के बीच पारस्परिक क्रिया पर निर्भर करता है। कैडमियम की अधिक मात्रा होने पर दूसरे तत्त्व भी प्रभावित होते हैं। मृदा के बहुत सारे भौतिक एवं रासायनिक गुण जैसे पी.एच., ताप, कार्बनिक पदार्थ, क्ले की मात्रा, नमी इत्यादि कैडमियम की विषाक्तता को प्रभावित करते हैं। अम्लीय मृदा में यह अत्यधिक चल होता है परन्तु क्षारीय मृदा में यह अचल होता है

मरकरी

यह धातु सबसे पहले ऑक्सीकरण प्रतिक्रिया द्वारा बनता है।

$$HgO \xrightarrow{[O]} Hg^{2+} \xrightarrow{\text{जीवाणु}} \underset{\text{मिथाइल मरकरी}}{CH_3Hg^+} \xrightarrow[\text{प्रतिक्रिया}]{\text{जैव}} \underset{\text{डाइमिथाइल मरकरीअवकरण}}{CH_3HgCH_3}$$

यह अभिक्रिया एरोबिक अथवा एनएरोबिक वातावरण में होगा।

तालिका : पौधो की पत्तियों में विषाक्त तत्वों का स्तर (पी.पी.एम.)

तत्व	कमी	पर्याप्त	विषाक्त
Zn	10-20	27-150	100-400
Cu	2-5	5-30	20-100
Ni		0.1-5	10-100
Cd		0.05-0.2	5-30
Pd		5-10	30-300
Hg			1-3
Cr		0.1-0.5	5-30
Mo	0.1-0.3	0.2-5	10-50
Se		0.01-2	5-30
As		1-1.7	5-20
F		5-30	50-500
Be		<1-7	10-50
B	5-30	10-100	50-200
Ti			50-200
V		0.2-1.5	5-10
Mn	10-30	30-300	400-1000
Co		0.02-1	15-50
Zr			15
Ag		0.5	5-10
Sn			60
Sb		7-50	150
Ba			500

2.8 रासायनिक उर्वरक, जैविक उर्वरक (खाद), जीवाणु खाद, समेकित (इनटीग्रेटेड) पोषक तत्त्व प्रबंधन

खाद और उर्वरक

खाद और उर्वरक शब्द का प्रयोग जल के अतिरिक्त उन सभी पदार्थों के लिए होता है, जो मृदा उर्वरता में वृद्धि करके पौधे की वृद्धि को भी बढ़ाते हैं।

खाद (मैन्योर) वे सभी पदार्थ जो वनस्पति तथा पशुओं और पक्षियों के मल–मूत्र से प्राप्त होते हैं या फार्म के उप–उत्पाद (बाई–प्रोडक्ट) होते हैं, खाद कहलाते हैं। खाद प्रायः कार्बनिक तथा अधिक भारी होती है, पौधे के आवश्यक पोषक तत्त्व इनसे धीरे–धीरे मुक्त होते हैं, इसलिए पौधों पर इनका प्रभाव धीरे–धीरे पड़ता है। इनमें पौधों के सभी पोषक तत्त्व अधिक या सूक्ष्म मात्रा में मिलते हैं जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, ग्वानो आदि। खादों के मुख्य रूप से दो गुण होते हैं – (1) पौधों के आवश्यक तत्त्व कम मात्रा में उपस्थित होते हैं तथा (2) कार्बनिक पदार्थ की मात्रा पर्याप्त होती है। खादों के प्रयोग से आवश्यक तत्त्वों की पूर्ति के साथ–साथ मृदा की भौतिक दशा भी सुधर जाती है। मृदा में ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है और सूक्ष्मजीवों को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए उपयुक्त दशाएँ प्राप्त होती है। जैविक खाद में सभी आवश्यक पोषक तत्त्व रहता है।

उर्वरक (फर्टिलाइजर) अकार्बनिक रासायनिक पदार्थ होते हैं जो कारखानों में तैयार किये जाते हैं। इनमें पौधों के पोषक तत्त्वों की मात्रा अधिक पायी जाती है। कुछ उर्वरक कार्बनिक रूप में पाये जाते हैं, जैसे यूरिया उर्वरकों में पौधों को एक या दो पोषक तत्त्व प्राप्त होता है। सभी उर्वरक जल विलेय होते हैं तथा पौधे नाइट्रेट आदि उर्वरकों के उदाहरण है।

खाद एवं उर्वरकों का वर्गीकरण

खाद की उत्पत्ति के रूप, प्राप्ति के साधन, संगठन तथा उनके विभिन्न गुणों के आधार पर खादों के विभिन्न वर्गीकरण किये गये हैं।

1. प्रथम वर्गीकरण : इसमें खाद को तीन समूहों में विभक्त किया जाता है ।

(अ) कार्बनिक खाद : यह प्राप्ति स्थान के आधार दो उपवर्गों में वर्गीकृत किये गये हैं।

(1) पाशविक खाद : वे खादें हैं जो वस्तुओं के अवशेष पदार्थों से या पशुओं से प्राप्त पदार्थों की सहायता से तैयार किये जाते हैं, उदाहरणार्थ ऊन की खाद, रक्त की खाद, हड्डी की खाद, गोबर और मल–मूत्र की खाद, ग्वानों, मनुष्य के मैले की खाद आदि।

(2) वनस्पति खाद : वे खादें हैं जो सामान्य रूप से पेड़ पौधों के विभिन्न अंगों व अवशेष पदार्थों से तैयार की जाती है। इनमें हरी खाद का विशेष स्थान है। इसके अलावा पेड़ व पौधे की पत्तियाँ, शाखायें, जड़ें, आदि भी खाद के रूप में प्रयोग की जाती है।

कार्बनिक खादों को निम्न दो उपवर्गों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है

1. **स्थूल कार्बनिक खादें :** वे कार्बनिक खादें जिनमें कार्बनिक पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में होता है और अनुपात में पौधे के आवश्यक पोषक तत्त्व कम मात्रा में पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ गोबर की खाद, कम्पोस्ट ।
2. **हल्की कार्बनिक खादें :** वे खादें हैं जिनमें स्थूल कार्बनिक खादों की अपेक्षा पौधों के आवश्यक पोषक तत्त्वों की मात्रा अधिक पाई जाती है तथा पोषक तत्त्वों के अनुपात में कार्बनिक पदार्थ कम मात्रा में पाया जाता है, जैसे विभिन्न खल्लियों की खाद आदि।

(ब) अकार्बनिक खाद : इनमें कार्बनिक पदार्थ नहीं होता है ये रासायनिक यौगिक है इनका निर्माण कारखानों में होता है, इन्हें प्रायः उर्वरक कहते हैं। इनमें पौधे के लिए एक या एक से अधिक पोषक तत्त्व होते हैं जैसे सोडियम नाइट्रेट, पोटेशियम सल्फेट, सुप्ररफास्फेट, अमोनियम सल्फेट आदि।

(स) खनिज खाद : वे खादें जिनके अवयव पौधों की राख में पाये जाते हैं तथा जिनका मुख्य स्रोत खनिज चट्टानें हैं, जैसे सोडियम तथा पोटैशियम सल्फेट्स, सोडियम नाइट्रेट।

2. **उर्वरकों में उपस्थित तत्त्वों के आधार पर वर्गीकरण :** इस आधार पर निम्न प्रकार का वर्गीकरण करते हैं।

(अ) नेत्रजन उर्वरक : इन सभी उर्वरकों में नाइट्रोजन मिलती है:– जैसे अमोनियम सल्फेट, यूरिया, अमोनियम क्लोराइड, आदि। इन उर्वरकों को निम्न चार उपवर्गों में विभाजित करते हैं।

1. **नाइट्रेट उर्वरक :** इन उर्वरकों में नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में उपस्थित रहती है, जैसे– सोडियम नाइट्रेट, कैल्शियम नाइट्रेट, पोटैशियम नाइट्रेट आदि।
2. **अमोनिकल उर्वरक :** इस समूह के नेत्रजन उर्वरकों में नाइट्रोजन अमोनियम रूप में रहती है, जैसे– अमोनियम सल्फेट, निर्जलीय अमोनिया, अमोनियम क्लोराइड आदि।
3. **नाइट्रेट एवं अमोनिकल नाइट्रोजन उर्वरक :** इस प्रकार के नेत्रजन उर्वरकों में नाइट्रोजन दोनो रूपों नाइट्रेट एवं अमोनिया में उपस्थित रहती है, जैसे– अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट।
4. **एमाइड उर्वरक :** इस प्रकार के नेत्रजन उर्वरकों में नाइट्रोजन एमाइड रूप में रहती है, जैसे– यूरिया, कैल्शियम सायनाइड आदि।

(ब) एमाइड उर्वरक : फॉस्फोरस प्रदान करने वाले सभी उर्वरक इस वर्ग में सम्मिलित किये जाते हैं, जैसे– सुपर फॉस्फेट आदि। इस वर्ग के उर्वरकों को उनकी विलेयता के आधर पर 3 उपवर्गों में विभाजित किया जाता है।

1. **जल विलेय फॉस्फेट उर्वरक :** इस वर्ग के उर्वरक पानी में शीघ्र विलेय होते हैं, जैसे– सिंगिल सुपरफॉस्फेट, ट्रिपल सुपरफॉस्फेट, मोनोअमोनियम फॉस्फेट, डाईअमोनियम फॉस्फेट आदि।
2. **साइट्रेट विलेय फॉस्फोरस उर्वरक :** इस वर्ग के उर्वरक साइट्रिक अम्ल में विलेय होते हैं, जैसे– डाई कैल्शियम फॉस्फेट, बेसिक स्लेग आदि।
3. **जल तथा साइट्रेट में अविलेय फॉस्फोरस उर्वरक :** ये उर्वरक जल और साइट्रिक अम्ल में अविलेय होते हैं, जैसे– रॉक फॉस्फेट, हड्डी का चूरा आदि।

(स) पोटाश उर्वरक : यह वे उर्वरक हैं जो पोटाश प्रदान करते हैं जैसे पोटेशियम सल्फेट आदि। इस समूह के उर्वरकों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित करते हैं –

1. **जिनमें पोटाश, क्लोराइड के रूप में पाया जाता है :** इसके उदाहरण म्यूरेट ऑफ पोटाश या पोटैशियम क्लोराइड हैं।
2. **जिनमें पोटाश, क्लोराइड के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में पाया जाता है :** इसके उदाहरण पोटैशियम, मैग्नीशियम कार्बोनेट, पोटैशियम सल्फेट, पोटैशियम नाइट्रेट आदि हैं।

3. **मृदा अभिक्रिया पर उर्वरकों के प्रभाव के आधार पर वर्गीकरण :** इस आधार पर निम्न वर्गों में उर्वरकों को वर्गीकृत करते हैं–

1. **क्षारीय उर्वरक :** वे उर्वरक जो मृदा को क्षारीय बनाते हैं। इनके लगातार प्रयोग करने से मृदा में क्षारीय लवणों की मात्रा बढ़ती है, जैसे सोडियम नाइट्रेट।
2. **अम्लीय उर्वरक :** वे उर्वरक जो मृदा अम्लता को बढ़ाते हैं, जैसे– अमोनियम सल्फेट।
3. **उदासीन उर्वरक :** इन उर्वरकों के प्रयोग से न तो मृदा अम्लता बढ़ती है और न मृदा क्षारता ही बढ़ती है, जैसे– कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट आदि।

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कोई भी वर्गीकरण संतोषजनक नहीं है। उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाले पदार्थों को निम्न चार वर्गो में वर्गीकृत कर सकते हैं –

1. **सामान्य खाद :** यह वे खादें हैं जिनमें पौधों के सभी आवश्यक पोषक तत्त्व उपस्थित होते हैं, इसलिए उन्हें पूर्ण खाद भी कहते हैं। उदाहरणार्थ कम्पोस्ट, फार्म की खाद, सीवेज, स्लेज, ग्वानों आदि।

2. **विशिष्ट खाद** : पौधों को एक या दो तत्त्व प्रदान करती है। ये नेत्रजन, फॉस्फेटिक और पोटैशिक उर्वरकों में विभाजित किये जाते हैं।

3. **मृदा सुधारक** : ये पदार्थ भूमि में भौतिक, रासायनिक, जैविक परिवर्तनों को प्रभावित करके पौधों की वृद्धि में अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करते हैं, जैसे चूना मृदा में अम्लता को उदासीन करने के लिए मिलाते हैं। यह भौतिक रासायनिक व जैविक क्रियाओं को सुधारकर पौधों की वृद्धि में सहायता करता है, इसलिए चूना एक मृदा सुधारक है।

4. **उत्तेजित करने वाले तथा प्रोफाइलेक्टिक खाद** : इन खादों में बोरोन, कॉपर, आयरन, जिंक, मैंगनीज, क्लोरीन तथा मोलिब्डेनम जो कि पौधों को कम मात्रा में आवश्यक होते हैं तथा सूक्ष्म तत्त्व कहलाते हैं, सम्मिलित हैं। यह पौधों पर उत्तेजित प्रभाव करते हैं।

कार्बनिक खादें

कार्बनिक खादें पौधों के लिए पोषक तत्त्वों का स्रोत है। मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर भी इनका प्रभाव पड़ता है, कार्बनिक खादों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जाता है।

1. **स्थूल कार्बनिक खाद** : स्थूल कार्बनिक खादों में प्रक्षेत्र खाद, कम्पोस्ट, शहरी कम्पोस्ट, अवमल (स्लज), हरी खाद आदि प्रमुख रूप से सम्मिलित किये जाते हैं। ये सभी खादें पौधों के पोषक तत्त्वों को न्यूनतम मात्रा में तथा कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में प्रदान करती है।

2. **सान्द्रित कार्बनिक खाद** : इस वर्ग में उन खादों को लिया जाता है जिनमें पोषक तत्त्वों की मात्रा स्थूल कार्बनिक खादों की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है। इस वर्ग के खादों में खलियाँ, मछली की खाद, ग्वानों, रूधिर चूर्ण, सींग व खुरों का चूर्ण, काजल, भूसा या लकड़ी का बुरादा, शीरा, तालाब की मिट्टी आदि सम्मिलित है।

स्थूल कार्बनिक खाद : ये मृदा पर तीन रूपों में प्रभाव डालते हैं :

1. इन खादों में पौधों के पोषण के लिए सभी तत्त्व उपस्थित होते हैं इसलिए इनका पादप वृद्धि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इन खादों में पोषक तत्त्व न्यून मात्रा में होते हैं अतः इन खादों का प्रयोग काफी मात्रा में करना पड़ता है। मुख्य पोषक तत्त्वों के साथ ही इन खादों में अल्प मात्रा में सूक्ष्म तत्त्व भी पाये जाते हैं।

2. इन खादों के प्रयोग से मृदा की भौतिक दशा सुधरती है। रेतीली मृदाओं में इनके प्रयोग से मृदा की जल शोषण एवं जल धारण क्षमता बढ़ती है तथा क्ले मृदा में जल निकास में सुधार होता है।

3. ये खाद मृदा के सूक्ष्म जीवों के लिए भोजन प्रदान करते हैं जिनके फलस्वरूप सूक्ष्म जीवों की कार्यक्षमता तथा उनकी संख्या में वृद्धि होती है। सूक्ष्म जीव अनेक संकीर्ण अप्राप्य पदार्थों को प्राप्य रूप से परिवर्तित करते हैं।

गोबर की खाद या प्रक्षेत्र खाद

प्रक्षेत्र खाद फार्म पर रहने वाले पशुओं के गोबर, मूत्र, बिछावन में प्रयुक्त होने वाले वनस्पति पदार्थ एवं पशुओं के चारे के अवशेषों को सड़ाकर प्राप्त किया जाता है। भारत में इस खाद को तैयार करने में अधिक गोबर काम आता है इसलिए इसे प्रायः गोबर की खाद का नाम दिया गया है।

गोबर की खाद फार्म पशुओं घोड़ा कभी–कभी सूअरों के ठोस एवं द्रव मल–मूत्र तथा किसी शोषक पदार्थ जिसे बिछावन कहते हैं, का एक सड़ा हुआ मिश्रण है। बिछावन में साधरणतया भूसा, बुरादा, छीलन अथवा अन्य कोई शोषक पदार्थ जो पशुओं के बाँधने के स्थान पर प्रयोग किया गया हैं।

गोबर की खाद का संगठन (कम्पोजिशन) : गोबर की खाद तीन पदार्थों से मिलकर बनती है।

1. ठोस पदार्थ अर्थात् जानवरों का गोबर
2. द्रव पदार्थ अर्थात् जानवरों का मूत्र
3. भूसा अथवा अन्य वनस्पति पदार्थ जिनका प्रयोग बिछावनी के लिए किया जाता है। भारत में बिछावन का प्रयोग बहुत कम होता है। किसान जानवरों के मूत्र का उपयोग भी ठीक प्रकार से नहीं कर पाते और अधिकतम मूत्र बहकर या भूमि द्वारा सोखकर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार गोबर की खाद केवल जानवरों के गोबर से ही तैयार की जाती है।

जैव उर्वरक

कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भरता की दृष्टि से बीज, जल प्रबन्ध, उर्वरक तथा पौधा संरक्षण का उल्लेखनीय योगदान रहा है। उत्पादन में उर्वरकों का योगदान 55 प्रतिशत आंका गया है। रासायनिक उर्वरकों की कमी तथा अत्यधिक कीमत होने के कारण सभी कृषक इनका प्रयोग सिफारिश के अनुरूप नहीं कर पाते हैं, फिर भी इन रसायनों के निरन्तर एवं जहाँ–तहाँ अधिक प्रयोग के फलस्वरूप पर्यावरण तथा मृदा अत्यधिक दूषित हुए हैं। अतः सतत् कृषि उत्पादन में मृदा उर्वरता को बनाए रखने, उत्पादन लागत कम करने तथा पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए आधुनिक कृषि में जैव उर्वरकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उत्तम गुणों से पूर्ण फसल–विशिष्ट जैव उर्वरकों का भली–भांति प्रयोग करके उपरोक्त समस्याओ से पूर्णतः राहत प्राप्त की जा सकती है।

जैव उर्वरक सूक्ष्म जीवाणुओं युक्त टीका है जिसके उपयोग से फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। इसमें जीवित सूक्ष्म जीवाणुओं के शक्तिशाली विभेद होते हैं। जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकरण द्वारा तथा मृदा फॉस्फेट को विलय करके पौधों को नाइट्रोजन व फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्त्व प्राप्त कराते हैं। आजकल भारत में अनेक जैव उर्वरक उपलब्ध है।

जैव उर्वरकों का वर्गीकरण

जैव उर्वरक को दो वर्गों में विभाजित किया गया है –

1. नाइट्रोजन स्थिरक, 2. फॉस्फेट परिवर्तनीय

1. **नाइट्रोजन स्थिरक जैव उर्वरक :** इसे दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है –
   1. दलहनी फसलों के लिए नाइट्रोजन स्थिरक जैव उर्वरक, उदाहरणार्थ– राइजोबियम एवं
   2. दाने वाली फसलों (सिरियल्स) के लिए नाइट्रोजन स्थिरक जैव उर्वरक, जैसे– एजोस्पिरलम, एजोटोबैक्टर, एजोला, बी.जी.ए।
2. **फॉस्फेट परिवर्तनीय जैव उर्वरक :** इसे दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है –
   1. फॉस्फेट विलेयक, जैसे– बैसीलस, स्यूडोमोनास, एसपरजिलस ।
   2. फॉस्फेट अवशोषक, जैसे– वी.ए. माइकोराइजा (भी.ए.एम.) जैसे ग्लोमस ।

विभिन्न फसलों के लिए जैव उर्वरक

देश में निम्नलिखित जैव उर्वरकों को किसानों के उपयोग के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है–

राइजोबियम : दलहनी फसलों में नेत्रजन के लिए फसल विशिष्ट।

एजोटोबैक्टर : सभी खाद्यान्नों, तिलहन, कपास, गन्ना, सब्जियों, बागवानी एवं वानिकी पौधे में नेत्रजन के लिए।

एजोस्पिरिलम : मोटे खाद्यान्नों तथा धान में नेत्रजन के लिए।

नील हरित शैवाल : खड़े पानी वाले धान में नेत्रजन के लिए।

एसीटोबैक्टर : केवल गन्ने में नेत्रजन के लिए विशिष्ट।

एजोला फर्न : खड़े पानी वाले धान में नेत्रजन के लिए

फास्फोटिका / फॉस्फोजोन : सभी फसलों में फॉस्फेट उपलब्ध कराने के लिए।

कम्पोस्टिंग कल्चर : कम्पोस्ट जल्दी पकाने के लिए।

जैव उर्वरक पौधों को प्रायः नेत्रजन व फॉस्फोरस की उपलब्धि में सहायक है। इसके साथ–साथ यह पौधों के लिए वृद्धिकारी–जटिल पदार्थ भी देते हैं तथा रोगो एवं कीड़ों के संक्रमण में कमी लाते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रमुख लाभ

- रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता में कमी एवं विदेशी मुद्रा की बचत।
- लगभग 20–50 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर नेत्रजन एवं 20–30 प्रतिशत प्रति हेक्टेयर फॉस्फेट की उपलब्धता में बढ़त।
- पौधे के अंकुरण व वृद्धि में सहायक।
- रोगाणुओं का दमन, कीड़ों का प्रकोप तथा फसलों की रक्षा।
- 10–20 प्रतिशत तक फसलोत्पादन में वृद्धि।
- आगामी फसलों के लिए लाभदायक अवशेष।
- प्रदूषण से मुक्ति।
- कृषि उत्पादों के उत्तम गुण।
- मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता शक्ति में वृद्धि।
- कम पूंजीगत लागत तथा अधिक लाभ ।
- जैव उर्वरकों के निरन्तर प्रयोग से मृदा में नई चेतना अनुभव की जा सकती है।

दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरक जीवाणु उनकी जड़ों में सहजीवन व्यतीत करते हैं और जड़ों में पायी जाने वाली ग्रन्थियों में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं इन्हें सहजीवी सूक्ष्म जीव कहते हैं। दाने वाली फसलों में स्वतन्त्र रूप से जीवन यापन करते हुए नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं, इन्हें असहजीवी सूक्ष्म जीव कहते हैं। जब फसलों को जैविक उर्वरकों का टीका लगाया जाता है तो वे वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। दलहनी फसलों में राइजोबियम जीवाणु पौधों के सहयोग से नाइट्रोजन के यौगिकीकरण की क्षमता रखते हैं इसे सहजीवी संगठन कहते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरक सूक्ष्म जीव

नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण जीवों का वर्णन निम्न है –

1. असहजीवी, स्वतन्त्र रूप से जीवन यापन करने वाले अणुजीव

स्वतंत्र रूप से जीवन यापन करने वाले अणुजीवों द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के यौगिकीकरण की प्रक्रिया को असहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण कहते हैं। यह प्रक्रिया एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम, नीलहरित शैवाल आदि द्वारा सम्पन्न होती है।

(अ) **एजोटोबैक्टर** : यह कृषि में अपने योगदान के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और सर्वाधिक प्रचलित जीवाणु है। एजोटोबैक्टर जीवाणु एजोटोबैक्टीरिएसी कुल में रखा गया है जिसकी जातियाँ एजोटोबैक्टर क्रोकोकम, एजोटोबैक्टर एजीलिस, एजोटोबैक्टर वाईनीलेन्डी और एजोटोबैक्टर बैजरीकी प्रमुख है। इनमें से कुछ जातियाँ मृदा में एवं कुछ जल में भी पायी जाती है। एजोटोबैक्टर क्रोकोकम भारतीय मृदाओं (क्षारीय एवं उदासीन) में पायी जाने वाली प्रमुख जाति हैं। ये जीवाणु भूमि और जड़ की सतह पर स्वतन्त्र रूप से रहकर ऑक्सीजन की उपस्थिति में वायुमण्डल नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं।

(ब) **एजोस्पिरिलम** : फसलों में इस जीवाणु का उपयोग अभी हाल में ही प्रारम्भ हुआ है। यह घासों तथा अन्य ग्रेमिनी कुल की फसलों के पौधों में जड़ों के ऊपर या अन्दर उगता है और वहीं पर नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करता है।

(स) **एसीटोबैक्टर** : एसीटोबैक्टर नामक सूक्ष्म जीवाणु की खोज तथा अनुभव ब्राजील तथा क्यूबा से गन्ने के क्षेत्र मे प्राप्त हुए है। यह जीवाणु सिरके में भी देखे जा सकते हैं। इनकी मौजूदगी एक विशेष गंध से अनुभव की जा सकती है। यह अत्यधिक क्षारीय एवं अम्लीय परिस्थितियों में भी सक्रिय रहता है।

(द) **नील हरित शैवाल** : इनकी वृद्धि धान के खेत में जहाँ पानी भरा रहता है, अच्छी प्रकार होती है। नाइट्रोजन यौगिकीकरण के अतिरिक्त यह विटामिन और वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले पदार्थों का स्राव करते हैं जो धान के पौधों की अच्छी वृद्धि के

लिए लाभप्रद है। नीलहरित शैवाल भूमि में स्वतन्त्र रूप से रहने वाले वे जीवाणु हैं जो अपना भोजन प्रकाश, जल, मुक्त नाइट्रोजन, कार्बन डाई ऑक्साइड और आवश्यक खनिजयुक्त लवणों की उपलब्धता में बनाते हैं। ये मुख्यतः पानी जमाव वाले क्षेत्रों में अधिक संख्या में पाए जाते हैं। नील हरित शैवाल की औलोसिरा, ऐनाबिना, ऐनाबिनाप्सिस, कैलोथ्रिक्स, कैम्पाइलोनमा, सिलिन्ड्रोस्पर्मम पिफश्चरेला, हैप्लोसीपफान, माइक्रोकीटे, नॉस्टोक, वेस्टिलोप्सिस और टोलीपोथ्रिक्स नामक प्रजातियाँ जलाक्रान्त दशा के लिए उपयुक्त होती है।

(प) **एजोला :** यह एक तैरने वाला जलीय फर्न है जो नीलहरित शैवाल के सहसम्बन्ध में पत्तियों की सतह के छेदों में रहकर नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। नीलहरित शैवाल एवं एजोला के पारस्परिक सहजीवन के फलस्वरूप वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। धान की खेत में इसे डालने से प्रतिदिन 1–2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है।

2. सहजीवी

इस वर्ग में नाइट्रोजन का यौगिकीकरण राइजोबियम द्वारा होता है।

राइजोबियम

जैव उर्वरकों में राइजोबियम नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाला एक महत्त्वपूर्ण जीव है। यह दलहनी पौधों की जड़ ग्रन्थियों में रहकर सहजीवी जीवन यापन करता है और पौधों को नाइट्रोजन प्रदान करता है। इस साहचर्य सहजीवन में पौधों को राइजोबियम नाइट्रोजन एवं राइजोबियम को पौधे से ऊर्जा पदार्थ कार्बोहाइड्रेट्स प्राप्त होते हैं। राइजोबियम की अनेक प्रभावकारी और उन्नतिशील जातियाँ विकसित की गयी है। ये जीवाणु उदासीन या क्षारीय मृदा में दलहनी पौधे की जड़ों के पास रहते हैं और उपयुक्त परिस्थितियाँ मिलने पर ये पौधों की जड़ों के मूलरोमों के द्वारा संक्रमण करके जड़ों की कार्टेक्स में पहुँच कर प्रजनन करते हैं साथ ही कार्टेक्स कोशिकाओं का विभाजन होता है, जिसके फलस्वरूप इन जड़ों पर गाँठों का निर्माण होता है। राइजोबियम के जीवाणुओं का पौधों की जड़ों में प्रवेश करने का आकार बदलकर गोल हो जाता है और इनको बैक्टीराइड कहते हैं। इन बैक्टीराइड में नाइट्रोजिनेस एन्जाइम होता है। जिसकी उपस्थिति में ही नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। ये जीवाणु गाँठों में रहते हुए पौधों की कोशिकाओं में शर्क्रा भोजन के रूप में उपयोग करते हैं और साथ ही वायुमण्डल की नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित कर देते हैं जो बाद में पौधे के लिए उपयोगी पोषक नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

फॉस्फोरस परिवर्तनीय जैव उर्वरक

फॉस्फेट जैव उर्वरक दो प्रकार के होते हैं :

1. फॉस्फेट विलेय करने वाले जैव उर्वरक एवं 2. फॉस्फेट अवशोषित करने वाले जैव उर्वरक

1. फॉस्फेट विलेय जैव उर्वरक

फॉस्फोरस पौधों के लिए नाइट्रोजन के बाद मुख्य पोषक तत्त्व है। फॉस्फोरस की दी गयी मात्रा का केवल 15–25 प्रतिशत भाग ही पौधों को प्राप्त हो जाता है और शेष भाग अविलेय अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। कुछ सूक्ष्म जन्तूओं में फॉस्फोरस घोलने की क्षमता होती है। प्रमुख फॉस्फेट विलेयकारी सूक्ष्म जन्तु निम्न हैं –

बैक्टीरिया : स्यूडोमोनास स्ट्रेइटा, बेसिलस पोलीमाइक्स, बेसलिस मेगाटेरियम आदि।

फन्जाई : एस्परजिलस अवामोरी, एस्परजिलस नाइगर आदि।

ये सूक्ष्म जीवाणु रॉक फॉस्फेट के साथ मृदा में स्थिर फॉस्फोरस को विलेय अवस्था में बदलते है जबकि बेसिलस मेगाटेरियम जीवाणु स्थिर फॉस्फोरस के साथ–साथ कार्बनिक फॉस्फोरस को भी विलेय अवस्था में बदलता है। ये जीवाणु पौधों की जड़ों को मजबूत और गुच्छेदार बनाते हैं जिससे नाइट्रोजन स्थिरीकरण अधिक होता है। फॉस्फेट जीवाणु को राइजोबियम के साथ–साथ देने पर पैदावार में 10–30 प्रतिशत अधिक की वृद्धि होती है।

2. **फॉस्फेट अवशोषक जैव उर्वरक माइकोराइजा :** पौधों की जड़ और उसके अन्दर पायी जाने वाली फंजाई का आपसी सहसम्बन्ध होता है जो कि वैसकुलर अरबस्कुलर माइकोराइजा कहलाता है। पौधों के अन्दर पायी जाने वाली फंजाई फॉस्फोरस

के अवशोषण मदद करती है। दलहनी फसलों के पोषण में इन फंजाई की भूमिका का राइजोबियम के साथ अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इनकी उपस्थिति में जड़ ग्रन्थियों की संख्या और नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दर में वृद्धि होती है। ये लाभप्रद पादप वृद्धि पदार्थ भी पैदा करते हैं। यह फंजाई पौधों से कार्बोहाइड्रेट्स ग्रहण करती है और पौधों को पोषक तत्त्व और हार्मोन्स वापस करती है साथ ही साथ पौधों की जड़ों द्वारा होने वाली बीमारियों से बचाती है।

एकीकृत पादप पोषक तत्त्व प्रबंधन

अभिप्राय

उर्वरकों, जैव खादों, फसल अवशेष, जैव उर्वरकों आदि को विवेकपूर्ण एवं सूक्ष्म ढंग से प्रयोग करके मृदा उत्पादकता एवं पर्यावरण को संरक्षित करने के साथ ही फसलोत्पादन और कृषकों की लाभ देयता में वृद्धि करना ही एकीकृत पादप पोषक तत्त्व प्रबंधन (आई.पी.एन.एम.) का मूल अभिप्राय है।

समन्वित पोषक तत्त्व प्रबंध (आई.एन.एम.) – एक सामान्य प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य पौधों के आवश्यक सभी पोषक तत्त्वों को सभी उपलब्ध स्रोतों से उचित मात्रा में इस प्रकार करायें जायें ताकि फसल से अधिकतम उपज प्राप्त कर सकें तथा साथ–साथ मृदा के स्वास्थ्य में भी वृद्धि हो। समन्वित पोषक तत्त्व प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न स्रोतों की उपयोग क्षमता को बढ़ाना तथा सभी स्रोतों का प्रभाव फसल उत्पादकता पर गुणात्मक हो।

समन्वित पोषक तत्त्व प्रबंधन की आवश्यकता – उर्वरकों के प्रचलन के पूर्व खेती में कार्बनिक खादों का ही प्रयोग किया जाता था। उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि की शुरुआत होते ही कार्बनिक खादों को कम महत्त्व दिया जाने लगा। ऐसी दशा में मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम होने के साथ–साथ गौण एवं सूक्ष्म तत्त्वों की प्राप्य मात्रा में भी कमी हुई। मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में भी उर्वरकों के प्रयोग से गिरावट आयी जिसके फलस्वरूप फसलोत्पादन में भी गिरावट आ रही है। अतः टिकाऊ खेती के लिए समन्वित पोषक तत्त्व प्रबंधन निम्न कारणों से आवश्यक हो गया है –

1. निम्न उत्पादकता के कारण बढ़ती हुई जनसंख्या को खिलाने के लिए काफी मात्रा में अन्न का प्राप्त न होना।
2. खेती के लिए और अधिक भूमि का उपलब्ध न होना।
3. अकार्बनिक उर्वरकों की कीमत मे नियमित रूप से वृद्धि होना।
4. आवश्यकतानुसार उर्वरकों का प्राप्त न होना। ऐसा अनुमान है कि भविष्य में उर्वरकों की खपत में वृद्धि अवश्य होगी परन्तु पोषक तत्त्वों की कुल आवश्यकता का मात्र 70 प्रतिशत उर्वरकों से पूरा हो सकेगा और पोषक तत्त्वों की शेष 30 प्रतिशत मात्रा की पूर्ति कार्बनिक खादों, जैव उर्वरकों आदि के माध्यम से करनी होगी।
5. अकार्बनिक उर्वरकों के लगातार एवं आधिक्य में प्रयोग होने से पर्यावरण प्रदूषण तथा मृदा, पशु एवं मनुष्यों पर हानिकारक प्रभाव पड़ना।
6. मृदा पोषक तत्त्वों का लगातार दोहन – पोषक तत्त्वों का स्तर मृदा में फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त होना चाहिए और इनका अनावश्यक रूप से ह्रास न हो यही एकीकृत पादप पोषण प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य है। इस प्रबन्धन से न केवल अधिक उत्पादन होता है अपितु पर्यावरण सुरक्षा और टिकाऊ खेती को बल मिलता है। समन्वित पोषक तत्त्व प्रबंध से सभी आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्त्व जैविक खाद से प्राप्त हो जाता है।

उद्देश्य

1. पादप पोषकों के सभी प्रदूषण रहित प्राप्य का स्रोतों का प्रयोग – पादप पोषक तत्त्वों के स्रोतों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक भूमि सुधरकों का प्रयोग करना आवश्यक है।
2. मृदा के भौतिक रासायनिक गुण एवं उर्वरता का संधरण करना।
3. उच्च उत्पादकता के लिए कार्बनिक खाद, अकार्बनिक उर्वरक, हरी खाद और जैव उर्वरकों के उचित प्रयोग को प्रोत्साहन देना।
4. कार्बनिक निरर्थक पदार्थो (ऑर्गेनिक वेस्टेस) का प्रयोग – हमारे देश में प्रतिवर्ष काफी मात्रा में फसल अवशेष उपलब्ध होते

है। धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा और मक्का जैसी केवल पाँच प्रमुख फसलों से 2360 लाख टन भूसा प्राप्त हो जाती है। अनाज वाली फसलों के भूसा में औसतन 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.6 प्रतिशत फॉस्फोरस और 1.5 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। इस प्रकार उपरोक्त पाँच प्रमुख फसलों के अवशेषों की 11.3 लाख टन नाइट्रोजन, 14.1 लाख टन फॉस्फोरस और 35.4 लाख टन पोटाश अर्थात कुल 60.8 लाख टन पोषक तत्त्व की पूर्ति की क्षमता है। यदि हम इन अवशेषों की आधी मात्रा का चारे के रूप में उपयोग करते हैं तब भी 30.4 लाख टन प्रमुख पोषक तत्त्वों की पूर्ति इनको पुनः भूमि को लौटा देने पर हो सकती है। इन फसलों का उपयोग कम्पोस्ट बनाने, मल्च के रूप में अथवा सीधे भूमि में मिलाकर किया जा सकता है। भविष्य में अन्न उत्पादन के साथ ही फसल अवशेष का उत्पादन एवं उपलब्धता बढ़ेगी।

5. पर्यावरण एवं इकॉलोजी मैत्री टिकाऊ खेती ।
6. मृदा में धनात्मक पोषक संतुलन का निर्माण करना ।
7. पोषक उपयोग क्षमता में वृद्धि करना
8. प्राकृतिक स्रोतों का सही प्रकार से प्रयोग।

मुख्य घटक

एकीकृत पोषक तत्त्व प्रबन्धन, पोषक तत्त्वों के सभी स्रोतों के संयुक्त प्रयोग और विभिन्न फसलों एवं फसल प्रणालियों के उपयुक्त विकास, उपज एवं गुणवत्ता के लिए वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। एकीकृत पोषक तत्त्व प्रबंधन के मुख्य घटक इस प्रकार है –

एकीकृत पोषक तत्त्व प्रबंधन के घटक					
कार्बनिक स्रोत		जैव उर्वरक		रासायनिक	
स्थूल कार्बनिक खाद • गोबर की खाद • कम्पोस्ट • वर्मी कम्पोस्ट • हरी खाद • फसल अवशेष	सान्द्रित कार्बनिक खाद • खल्लियाँ • हड्डी की खाद • खून की खाद	नाइट्रोजन स्थिरक • राइजोबियम • एजोटोबेक्टर • एजोस्पिरिलम • नील हरित शैवाल	फॉस्फोरस विलायक • वाम (भी. ए.एम.) • कवक • जीवाणु	उर्वरक • एन.पी.के. • द्वितीयक • सूक्ष्म तत्त्व	औद्योगिक उप–उत्पाद • बेसिक स्लेग • फॉस्फो • –जिप्सम

2.9 उर्वरक नियोजन (प्लेसमेंट), उपरिवेशन (टॉप ड्रेसिंग) और पत्तों पर छिड़काव

फसल उत्पादन में उर्वरक का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। उर्वरकों के द्वारा पौधों को पोषक तत्त्वों की आपूर्ति होती है। पौधों के उचित विकास हेतु सोलह पोषक तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती हैं। अतएव लक्षित उपज लेने के लिए यह आवश्यक है कि उचित समय पर पोषक तत्त्वों का समुचित प्रयोग किया जाये। सघन खेती एवं उन्नतशील प्रभेद लेने के कारण पोषक तत्त्वों की मात्रा मिट्टी में कम होती गयी। अतएव इसकी आपूर्ति उर्वरकों के द्वारा की जाती हैं। उर्वरक बहुत ही मंहगा हो गया है, अतएव इसका उचित प्रबंधन जरूरी है उर्वरकों का व्यवहार मिट्टी जाँच के आधार पर ही की जानी चाहिए।

मृदा में जिन पोषक तत्त्वों की कमी होती हैं उसी के अनुसार उपर्युक्त उर्वरकों को उस मृदा में डालना चाहिए। लेकिन फसलों द्वारा उनका भरपूर उपयोग उर्वरकों के डालने की विधि तथा समय पर निर्भर होता है।

खादों के प्रयोग की विधि

कार्बनिक खादें जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदि खेत में छिटकवॉ विधि से दी जाती हैं। कुछ किसान गोबर की खाद को खेत में बिखेरने के समय से बहुत पहले ही खेत में खाद की छोटी–छोटी ढेरियाँ लगा देते हैं। यह विधि उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि इन ढेरियों में कार्बनिक पदार्थ शीघ्रता से ऑक्सीकृत होता है तथा पोषक तत्त्वों विशेषकर नाइट्रोजन का ह्रास होता हैं। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि खेत में ढेरियों को यदि 14 दिन तक न फैलाया जाए तो खाद के प्रभाव में 50 प्रतिशत की कमी आ जाती है। भारतीय दशाओं में ताप अधिक होने के कारण यह हानि और अधिक होती है। इसलिए खाद को खेत में तुरन्त फैलाकर अच्छी प्रकार मृदा में मिला देना चाहिए।

उर्वरक प्रयोग विधि

विभिन्न अवस्थाओं में फसलों को विभिन्न ढंग से खाद दिया जाता है। उर्वरकों के समुचित उपयोग से कम मात्रा में ही उर्वरकों के उपयोग से पौधों के पोषक तत्त्वों की समुचित प्राप्त होती है साथ ही साथ बोआई के समय बीजों पर उर्वरक का हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। उर्वरक प्रयोग की उचित विधि के चुनने में निम्न सिद्धांतों का ध्यान रखना चाहिए –

(i) **चल पोषक तत्त्व :** ये तत्त्व मृदा में एक जगह डालने पर भी पानी में घुलकर मृदा की पूरी सतह में फैल जाते हैं। चल लवणों में नाइट्रेट, क्लोराइड और सल्फेट प्रमुख है।

(ii) **अचल पोषक तत्त्व :** ये तत्त्व मृदा में जिस स्थान पर डाले जाते हैं, वहीं पड़े रहते हैं ओर अगर जड़ें पोषक तत्त्व के पास आ जाती है तो वे उपलब्ध हो जाते हैं अन्यथा मृदा में ही पड़े रहते हैं, उदाहरणार्थ–फास्फोरस, पोटैशियम, आयरन, जिंक, मौलिब्डेनम, मैंगनीज आदि। फॉस्फोरस एवं पोटाश का संचालन प्रयोग किये जाने वाले स्थान से बहुत धीरे–धीरे होता है; साथ ही मृदा में इनका स्थिरीकरण भी हो जाता है, इसलिए इन उर्वरकों को जड़ क्षेत्र के समीप ही प्रयोग करना चाहिए। अतः इसका प्रयोग पौधों की जड़ों के पास करना अत्यन्त आवश्यक है जहाँ से पौधे आसानी से इसे ग्रहण कर सकें।

(iii) **उर्वरकों की विलेयता :** नाइट्रोजन उर्वरक जल में अत्यधिक विलेय होते हैं और प्रयोग के स्थान से प्रत्येक दशा में ये गतिशील होते हैं, अतः पौधे इन्हे प्रत्येक स्थान से आसानी से ग्रहण कर सकते हैं।

(iv) **उर्वरकों का ह्रास :** नाइट्रोजन लिचिंग द्वारा शीघ्र नष्ट हो जाती है, इसलिए इसे पौधों की वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं के थोड़ी–थोड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यूरिया जैसे नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग नम मिट्टी में करना चाहिए या तुरन्त सिंचाई करनी चाहिए अन्यथा इनका सुखी तथा सीधी धूप में उत्सादन (sublimation) द्वारा ह्रास होता है।

उर्वरक प्रयोग करने के विभिन्न तरीके

उर्वरकों का प्रयोग फसलों के लिए दो रूपों में प्रयोग किया जाता है–

(I) ठोस रूप में उर्वरक प्रयोग करने के तरीके

(A) छिटकवा विधि

इस विधि में उर्वरक को सम्पूर्ण क्षेत्र में समान रूप से छिड़क दिया जाता है। अधिक खरपतवार वाली मृदाओं में छिटकवा विधि से उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। साथ ही अधिक मात्रा में उर्वरक चाहने वाली फसलों में भी इस विधि को अपनाना लाभप्रद नहीं होता है। फॉस्फोरस एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों का प्रयोग इस विधि से नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनकी गतिशीलता कम होती है एवं मृदा में इनका स्थिरीकरण अधिक होता है। छिटकवा विधि अन्य विधियों की तुलना में कम खर्चीला होता है। इसमें उर्वरकों को कीटाणुनाशक या अन्य पदार्थों के साथ मिलाकर अनुप्रयोग किया जाता हैं। साथ–ही परिश्रम एवं समय की बचत करने के लिए ये विधि उपयुक्त है।

इस विधि में अधिक मात्रा में खाद एवं उर्वरक की आवश्यकता होती है तथा अधिक खर पतवार वाले खेतों में इस विधि द्वारा खाद प्रयोग करना लाभप्रद नहीं होता।

(i) **बुआई के समय छिटकवा विधि –** बुआई के पहले कार्बनिक खादों का तथा बुआई के समय प्रायः आधा नाइट्रोजन, एवं

पूर्ण फॉस्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का मुख्य उद्देश्य सारे खेत में समान रूप से उर्वरक का छिड़कना होता हैं। साथ ही बुआई के समय या बुआई के पहले इस विधि से उर्वरक अन्य विधियों की तुलना में काफी अधिक मात्रा में तथा अधिक सुरक्षित अवस्था में प्रयोग किये जा सकते हैं।

(ii) टॉप ड्रेसिंग : फसलों में पौधों की कतारों के बीच में स्थान कम हो या बीज छिटकवा विधि से बोया गया है तो ऐसी फसलों में नाइट्रोजनमय उर्वरकों को जिनमें नाइट्रेजन नाइट्रेट रूप में होती है, जैसे– अमोनियम नाइट्रेट, सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, कैल्शियम नाइट्रेट आदि को खड़ी फसलों में छिटककर प्रयोग करते हैं। खड़ी फसलों में छिटककर उर्वरक प्रयोग करने की विधि को टॉप ड्रेसिंग कहते हैं। इस विधि का प्रयोग उर्वरकों को शीघ्र नाइट्रोजन प्रदान करने के लिए किया जाता है। फॉस्फोरस एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों का इस ढंग का प्रयोग केवल चरागाह या बहुवर्षीय फसलों में किया जाता है। इस विधि में यह सावधानी रखते हैं कि खड़ी फसलों में उर्वरक प्रयोग करते समय फसल की पत्तियाँ गीली नहीं होनी चाहिए, क्योंकि गीली पत्तियाँ पर उर्वरक चिपक जाने से पत्तियाँ जल जाती हैं। एक चौथाई नेत्रजन धान एवं गेहूँ का कल्ला निकलने के समय में प्रयोग करना चाहिए तथा एक चौथाई नेत्रजन फल–फूल निकलने के समय करना चाहिए।

(B) संस्थापन विधि :

इस विधि से खाद एवं उर्वरक का अनुप्रयोग फसल के बीज बोने के स्थान या पौधों की स्थिति को ध्यान में रखते हुये किया जाता है तथा खाद एवं उर्वरकों को समान रूप से खेत में न छिटकर केवल फसल के पास ही प्रयोग किया जाता है। संस्थापन विधि अपनाने से फॉस्फोरस एवं पोटाश का स्थिरीकरण अपेक्षाकृत कम होता हैं तथा यदि उर्वरक नम मृदा में प्रयोग किये जाते हैं इनका पौधों द्वारा शोषण आसानी से होता है।

संस्थापन विधि में उर्वरकों के प्रयोग के लिए निम्न विधि अपनाई जाती है:–

(i) हल दुस्तर संस्थापन : इस विधि में उर्वरकों का अनुप्रयोग हल की जुताई के साथ कूड़ों में किया जाता है तथा फसलों के बीज की स्थिति पर कोई ध्यान नहीं रखा जाता। पहले कूड़ का उर्वरक दूसरे कूड़ से ढक दिया जाता है। इस विधि का प्रयोग उन स्थानों में किया जाता है, जहाँ मृदा की ऊपरी सतह कुछ इन्चों तक पौधों के वृद्धि काल में शुष्क हो जाती हैं। अतः हल के द्वारा उर्वरक को नम मृदा में डालते हैं जिससे यह पौधों को प्राप्त हो सके।

(ii) गहन संस्थापन : यह विधि नाइट्रोजनमय उर्वरकों को धान के खेत में प्रयोग करने के लिए विस्तृत रूप से अपनाई जाती हैं। इस विधि में अमोनियामय उर्वरक जैसे अमोनियम सल्फेट या अमोनिया बनाने वाले उर्वरक, जैसे– यूरिया का काफी गहराई पर प्रयोग किया जाता है, जहाँ पर कि यह अमोनिया के रूप में ही बनी रहे, और फसल की सक्रिय वनस्पति काल में वृद्धि के लिए नाइट्रोजन उपलब्ध होती रहे।

विभिन्न स्थानों पर वहाँ की अवस्थाओं के अनुसार उर्वरकों का काफी गहराई पर प्रयोग विभिन्न तरीकों से किया जाता है। सिंचाई के उचित प्रबंध वाले क्षेत्रों में उर्वरक हल की सहायता से शुष्क मृदा में काफी गहराई तक प्रयोग किए जाते है, इसके पश्चात् सिंचाई करके खेत बुआई के लिए तैयार किया जाता हैं। परन्तु जहाँ सिंचाई का उचित प्रबंध नहीं होता है, वहाँ धान के लिए इस विधि से उर्वरकों का प्रयोग कीचड़ होने से पहले किया जाता है। इसमें कीचड़ होने से पहले खाद को खेत में छिटक देते हैं, और यह खाद कीचड़ होने की क्रिया द्वारा नीचे गहराई तक चला जाता है। अमोनियामय उर्वरकों की भाँति ही फास्फोरस युक्त उर्वरकों का प्रयोग इस विधि से किया जाता है। इस विधि से उर्वरक प्रयोग करने से उर्वरक की पानी के साथ बहकर होने वाली हानि कम हो जाती है।

(iii) अवमृदा संस्थापन : इस विधि में उर्वरकों का अनुप्रयोग मशीनों या भारी हलों की सहायता से अवमृदा में किया जाता है। यह विधि आर्द्र क्षेत्रों में जहाँ अवमृदा अधिकतर प्रबल अम्लीय होती है, प्रयोग की जाती है। इन मृदाओं में अम्लीय दशायें होने के कारण पौधों को प्राप्य तत्त्वों की मात्रा बहुत कम होती है। इन दशाओं में, विशेष–कर फास्फोरस एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों का प्रयोग अवमृदा में जड़ों के उचित विकास के लिए किया जाता है।

(C) स्थानिक संस्थापन : इस विधि में उर्वरकों का प्रयोग फसल के बीज या पौधों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इस विधि का प्रयोग उस समय विशेष रूप से किया जाता है जबकि बहुत कम मात्रा में उर्वरक प्रयोग करने होते हैं। इस विधि में चूँकि उर्वरक पौधों के पास ही प्रयोग किये जाते है, अतः पौधों की जड़ों को पोषक तत्त्व आसानी से उपलब्ध होते रहते हैं। अधिकतर अवस्थाओं में इस विधि में उर्वरकों का प्रयोग फसल की बुआई के साथ किया जाता है। बुआई के साथ उर्वरकों के प्रयोग में यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि बीज के पास अधिक उर्वरक एकत्रित न हो अन्यथा बीज अंकुरण प्रभावित हो

सकते हैं या पौधे प्रारंभिक अवस्था में नष्ट हो सकते हैं।

साधारणतः इस विधि से अधिक दूरी पर लाईनों में बोई गई फसलों में सीमित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग अत्यधिक लाभप्रद होता है। पौधों की लाईन के एक तरफ या दोनों तरफ पतली लाईनों से थोड़ा नीचे उर्वरक प्रयोग करना लाभप्रद होता हैं। स्थानिक संस्थापन से उर्वरक प्रयोग करने की विभिन्न विधियाँ निम्न है–

(i) **स्पर्श संस्थापन :** इस विधि में उर्वरक और बीज का प्रयोग बोने के समय साथ–साथ सीड ड्रिल से करते हैं। धान, ज्वार, मक्का, बाजरा आदि फसलों में फॉस्फोरस और पोटाशयुक्त उर्वरकों का इस विधि से प्रयोग करना अत्यधिक लाभप्रद होता है। पास–पास अथवा घनी बोई जोने वाली फसलों में सभी उर्वरकों का इसी विधि से प्रयोग करना अधिक लाभप्रद होता है। उर्वरकों को बीज के साथ प्रयोग करने से कभी–कभी बीज का अंकुरण बुरी.तरह से प्रभावित होता है या नवीन पौधों का मृदा विलयन में लवणों का सान्द्रण अधिक होने से शुष्क बलुई मृदाओं में अत्यधिक हानि होती है। नाइट्रोजन और पोटाशयुक्त उर्वरक फॉस्फोरस उर्वरकों की अपेक्षा मृदा विलयन के लवणों के सान्द्रण में अधिक वृद्धि करते हैं। फलीदार फसलों जैसे मटर, अरहर, उर्द आदि में इस विधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इन फसलों के बीजों के अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

(ii) पट्टी संस्थापन : इस विधि में उर्वरकों का प्रयोग फसल की लाईनों के साथ पट्टियों में किया जाता है। पट्टी संस्थापन दो प्रकार का होता है:

(अ) **हिल संस्थापन :** अधिक दूरी पर बोई गयी फसलों अथवा उन फसलों में जिनमें लाईन से लाईन की दूरी तीन फीट या अधिक रखी जाती है, इस विधि में प्रत्येक पौधे के या तो एक तरफ अथवा दोनों तरफ उर्वरक पट्टियों में प्रयोग किया जाता हैं पट्टी की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई और पौधे से दूरी फसल की किस्म और उर्वरकों की मात्रा पर निर्भर होती है। भारत में यह विधि नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरसयुक्त उर्वरक को केला, संतरा, पपीता, सेब आदि में प्रयोग करने के लिए अपनाई जाती हैं।

(ब) **रो–संस्थापन :** फसलों में कम दूरी पर लाईनें हो तो उर्वरकों का प्रयोग लाईन के एक तरफ अथवा दोनों तरफ पट्टी के रूप में करते हैं। इस विधि में हिल संस्थापन से यही अन्तर होता है की इस विधि में पट्टियाँ फसल की लाईनों के साथ लगातार चलती रहती है। हिल संस्थापन की तुलना में इस विधि से प्रति हैक्टर अधिक मात्रा में उर्वरक प्रयोग होता है। यदि प्रति हैक्टर कम मात्रा में उर्वरक प्रयोग करना हो तो हिल संस्थापन अधिक लाभप्रद होत है। गन्ना, आलू, मक्का, तम्बाकू, कपास, धान्य फसलें और तरकारियों की फसलों में इसी विधि से उर्वरक प्रयोग किये जाते हैं।

(iii) **गोलिका अनुप्रयोग :** इस विधि में नाइट्रोजन उर्वरक धान की फसल की लाईनों के बीच में 1–2 ईंच गहराई पर गोलियों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। इस विधि में नाइट्रोजन उर्वरकों की 1:10 के अनुपात में मिट्टी में मिलाकर प्राप्त मिश्रण की गोलियाँ बनाई जाती है। इन गोलियों को धान के दो लाईनों के बीच में 1–2 ईंच की गहराई पर नम मृदा में प्रयोग किया जाता है।

(iv) **बगल में उर्वरक डालना :** इस विधि में उर्वरक पंक्तियों के बीच में या पौधों के चारों तरफ दिया जाता है। साईड ड्रैसिंग में उर्वरक प्रयोग करने के लिए निम्न विधियाँ अपनाई जाती हैं–

(अ) अधिक फासले वाली फसलों जैसे मक्का, गन्ना, तम्बाकू, ज्वार, जौ, टमाटर, बैंगन, कपास आदि में दो लाईनों के बीच खड़ी फसल में हाथ की सहायता से अतिरिक्त नाइट्रोजन की मात्रा मिलाई जाती है।

(आ) फल वाले वृक्षों, जैसे– पपीता, केला, संतरा, अंगूर, आम, अमरूद, कटहल आदि के तनों के चारों तरफ एक ही उर्वरक या कई उर्वरकों का मिश्रण प्रयोग करते हैं। यह साल में वृक्षों की उम्र को आधार पर 1, 2 या 3 बार किया जाता है। फल वाले वृक्षों में साईड ड्रैसिंग से उर्वरकों के प्रयोग को कभी–कभी हिल संस्थापन भी कहते हैं।

एक फसल के लिए विभिन्न उर्वरक अलग–अलग प्रयोग किये जाते हैं तो इनके प्रयोगों की विधियाँ भी विभिन्न होती हैं। स्थानिक संस्थापन फॉस्फोरस और पोटाशयुक्त उर्वरकों में नाइट्रोजन उर्वरकों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। अधिकांश फसलों के बोने के समय नाइट्रोजन की कुछ मात्रा फॉस्फोरस और पोटाश के साथ प्रायः साईड ड्रैसिंग विधि से दी जाती है। वृद्धिकाल के दौरान में फसल की लाईनों के बीच में अतिरिक्त नाइट्रोजन की मात्रा हाथ से फैला दी जाती है। साईड ड्रैसिंग विधि से प्रति हेक्टेएर खाद तो कम लगता है, लेकिन इन बात का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है कि उर्वरक सीधा पौधों के सम्पर्क में न आए।

II. द्रव रूप में उर्वरक प्रयोग करने के तरीके

विलयन के रूप में सिंचाई के साथ उर्वरक प्रयोग करने का तरीका विदेशों में बहुत अधिक प्रचलित है। अमोनिया के विलयन एवं फॉस्फोरस अम्ल को सिंचाई के साथ विलेय करके आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। निर्जलीय अमोनिया को सिंचाई जल के साथ प्रयोग करने की विधि को नाइट्रोगेशन कहते हैं।

(i) प्रारम्भिक उर्वरक विलयन : उर्वरकों के विलयन प्रायः $N - P_2O_5 - K_2O$ 1:2:1 और 1:1:2 के अनुपात में तैयार करके इनका प्रयोग पौधा लगाने के समय साग–सब्जियों की फसलों में किया जाता है। पौधे लगाने के तुरन्त बाद पौधों में हल्की सिंचाई करना आवश्यक होता है। अतः इस विधि से उर्वरकों का प्रयोग करने में सिंचाई के लिए साधारण जल की जगह प्रारंम्भिक उर्वरक विलयन का प्रयोग किया जाता है जिससे सिंचाई के साथ ही पौधों को पोषक तत्त्वों की प्राप्यता भी हो जाती है और नई जगह पर पौधे शीघ्र स्थापित हो जाते हैं। इस विधि में कभी–कभी फॉस्फोरस तथा पोटाश का स्थिरीकरण अधिक होता है साथ–ही वैसी फसल जिसमें सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

(ii) पर्ण अनुप्रयोग विधि : पौधों की पत्तियों पर उर्वरक के विलयन को छिड़क कर पौधों को पोषक तत्त्व प्रदान करने की क्रिया को पर्ण अनुप्रयोग कहते है। पर्ण अनुप्रयोग उसी दशा में प्रभावी होता है जब फसल का पर्ण क्षेत्र अधिक हो, जैसे फलदार वृक्ष, शोभाकार उद्यानों, बागानी फसलों सब्जियों तथा प्रक्षेत्र फसलों में फूल निकलने से पूर्व की प्रावस्था में। ये विलयन कम सान्द्रण के बनाये जाते हैं जो एक या अधिक पोषक तत्त्व पौधों को प्रदान करते हैं। आजकल नाइट्रोन उर्वरकों में यूरिया का इस विधि से बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः मृदा में अनुप्रयोग की तुलना पर्णीय अनुप्रयोग से पोषक तत्त्वों का अधिक अवशोषण होता है। अतः पर्ण अनुप्रयोग से प्रति इकाई पोषक तत्त्व से अधिक फसल अनुक्रिया प्राप्त होती है। प्रमुख पोषक तत्त्वों की पूरी आवश्यकता की आपूर्ति के लिए यह विधि लाभप्रद नहीं है इसलिए पर्ण अनुप्रयोग को सम्पूरक विधि के रूप में ही माना जाना चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की कमी दूर करने हेतु यह अत्यन्त प्रभावी विधि है। पत्तियों द्वारा पोषक तत्त्वों का अवशोषण सभी पौधों में संभव है किन्तु अवशोषण की दर उर्वरकों के स्वभाव और फसलों की किस्म पर निर्भर करती है। यूरिया का अवशोषण अतिशीघ्र होता है लेकिन फास्फोरस का अवशोषण अति मन्द गति से होता है।

(iii) मृदा में उर्वरक के विलयन का प्रत्यक्ष प्रयोग : उर्वरक प्रयोग करने का यह तरीका अमेरिका में अधिक प्रचलित है। इस विधि में विशेष उपकरण की सहायता से निर्जलीय अमोनिया और नाइट्रोजन विलय सीधे ही मृदा में 8–10 से0मी0 की गहराई पर प्रयोग किये जाते हैं। कभी–कभी नाइट्रोजन उर्वरकों के साथ ही फॉस्फोरस और पोटाश युक्त उर्वरकों का भी प्रयोग किया जाता है। 10 से0मी0 से अधिक गहराई पर उर्वरकों का प्रयोग करना लाभप्रद नहीं होता है, क्योंकि अधिक गहराई पर उर्वरकों की कुछ मात्रा का ह्रास हो जाता है।

(iv) सिंचाई के जल के साथ प्रयोग : अधिकांश नाइट्रोजन तथा जल विलेय कुछ फॉस्फोरस और पोटाशयुक्त उर्वरकों का प्रयोग सिंचाई के जल के साथ किया जाता है। इस विधि से केवल जल विलेय उर्वरकों का ही प्रयोग किया जाता है। जल विलेय उर्वरकों को पानी की धारा में सिंचाई की नाली में रख देते हैं। पानी में घुलकर यह सारे खेत में पहुँच जाते है। यदि खेतों का धरातल समतल न हो तो वहाँ इस विधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस विधि में उर्वरक प्रयोग करने में अतिरिक्त खर्च नहीं करना पड़ता, बल्कि सिंचाई के साथ ही उनका प्रयोग हो जाता है।

उर्वरकों का अधिकतम लाभ उठाने के लिए उनको ठीक समय पर डालना बहुत आवश्यक है

खादों का प्रयोग करने का समय : गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद आदि भारी खादें बुआई से पहले प्रयोग की जाती है, जिससे ये विच्छेदित होकर मृदा में भली–भाँति कर सके और इनमें उपस्थित पोषक तत्त्व भी विलेय तथा प्राप्य रूप में परिवर्तित हो जाए। इसलिए गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट के खेत में फसल को बोने से 4 से 6 सप्ताह पहले डालना चाहिए। खलियाँ फसल बोने के लगभग 8–10 दिन पहले खेत में मिला देनी चाहिए। खादों के अच्छी प्रकार न सड़ने पर दीमक आदि भी लग जाती है। साधारण अवस्था में हरी खाद का प्रयोग मृदा में बुवाई से 1–2 माह पहले करना चाहिए।

उर्वरकों के प्रयोग करने का समय

फसल का स्वभाव, इसकी वृद्धि अवस्थायें तथा पोषकों की आवश्यकता, मृदा दशायें तथा उर्वरकों का स्वभाव आदि कारक उर्वरकों के प्रयोग करने के समय को प्रभावित करते हैं।

(i) फसल को बोने से पहले देना : कुछ फास्फोरस, जैसे– रॉक फास्फेट, बेसिक स्लेग आदि का अधिक प्रभाव प्राप्त करने

के लिए फसल के बोने से पहले प्रयोग करते हैं। इन उर्वरकों से फास्फोरस जल अविलेय रूप में होता है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ से उत्पन्न अम्लों के सम्पर्क में आने से अविलेय फास्फेट विलेय रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। चूँकि इस प्रक्रम में समय लगता है इसलिए इन उर्वरकों को फसल के बोने से दो–चार सप्ताह पहले प्रयोग करना चाहिए।

(ii) बुआई के समय देना : फसल बोने के समय या बोने के तुरन्त पहले उर्वरकों के प्रयोग करने को आधारी अनुप्रयोग कहते हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उर्वरकों का प्रयोग बुआई के समय करना चाहिए। ढालू तथा रेतीली मृदाओं में वर्षा द्वारा खाद की हानि अधिक होती है। इसलिए इन अवस्थाओं में जल विलेय उर्वरकों का प्रयोग बुवाई से पहले नहीं करना चाहिए।

(iii) फसल बोने के बाद देना : खड़ी फसल में उर्वरक देने की विधि को टॉप ड्रैसिंग कहते हैं। सभी फसलों को उनकी उत्तम वृद्धि के लिए पोषक तत्त्वों की आवश्यकता बुआई से लेकर फसल के पकने तक भिन्न–भिन्न मात्राओं में होती है। अतः विशेष रूप से अधिक दिनों में पकने वाली फसलों जैसे गन्ना आदि के लिए पोषक तत्त्व फसल की वृद्धि की अवस्था में विभिन्न समय पर मृदा में मिलाये जाते हैं। लम्बी अवधि में पकने वाली धान की किस्म में नाइट्रोजन का एक भाग कल्ले फूटने तथा फूल आने की अवस्थाओं पर मृदा में मिलाया जाता है। हल्की कणाकार वाली मृदाओं में पोटैशियम की आवश्यक मात्रा का एक भाग खड़ी फसल में देने की सिफारिश की जाती है। बहुवर्षीय फसलों जैसे वृक्ष, लॉन आदि में रोपाई के समय पर खाद देने के अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष नाइट्रोजन, फास्फोरस एव पोटाश देने की आवश्यकता पड़ती हैं।

*****